चन्दामामा
अक्तूबर १९७३
90
P

Photo by: SAMBHU MUKHERJEE

इस मुन्नी में
आत्मविश्वास
जगाइए
उसे
बैंक ऑफ़ इन्डिया की
सेविंग्ज़ बैंक पास बुक दीजिए
बड़े होने के साथ बढ़ेगी बचत
और बढ़ती बचत के साथ
सुन्दर भविष्य में विश्वास!

ठीक समय पर सही काम...
हाँ, पिताजी!
FOR THE GUMS
फोरहॅन्स
दाँतों के एक डाक्टर का बनाया हुआ टूथपेस्ट।

49F-203R-HIN

चन्दामामा
संस्थापक: नागिरेड्डी
संचालक: 'चक्रपाणी'
इस महीने की बेताल कथा 'विजय चिह्न' राजनीति का अच्छा परिचय देती है। जीवन से विरक्त होने का मतलब है कि अपने जीवन से संबंधित सभी आशाओं तथा मोह के बंधनों से मुक्त होना है। इस रहस्य को अनेक सन्यासी जाने बिना वैराग्य प्राप्त करने के बाद भी उन माया और मोहों से पीड़ित रहते हैं। उस रहस्य से परिचित हो अपने जीवनकाल में इस अंतिम बंधन को भी तोड़नेवाले की कहानी है-"संकल्प सिद्धि"।
वर्ष: २६ अक्तूबर १९७२ अंक: ४
CP
CHITRA

नक्र: स्वस्थान माक्रम्य गजेंद्र मपि कर्षति:
स एव प्रच्युत: स्थानात् शुन्यापि परिभूयते । ॥ १ ॥

[मगर-मच्छ अपने स्थान पानी में रहकर बड़े हाथी को भी खींच सकता है, लेकिन अपने स्थान को छोड़ने पर बाहर एक कुत्ते के द्वारा भी पराभव प्राप्त करता है ।]

नीचाश्रयो न कर्तव्य: कर्तव्यो महदाश्रय:
ईशाश्रयो महानाग: पप्रच्छ गरुडं सुखम् । ॥ २ ॥

[नीच व्यक्तियों के आश्रय में जाना उचित नहीं है, बड़ों के ही आश्रय में जाना चाहिए । कहा जाता है कि ईश्वर के आश्रय में जाने के बाद महासर्प ने गरुड़ से पूछा–"तुम कुशल हो न ?"]

यात्येकतो स्तशिखरं पति रोषधीनाम्
आविष्कृतो रुणपुरस्सर एकतोर्क:
तेजोद्वयस्य युगप द्वयसनोदयाभ्याम्
लोकोनियम्यत इवात्म दशांतरेषु (कालिदास) ॥ ३ ॥

[एक ओर (पूर्णिमा के) चन्द्रमा का अस्त हो रहा है, दूसरी ओर अरुण के साथ सूर्य का उदय हो रहा है। एक महान व्यक्ति के गिरते दूसरे महान व्यक्ति का उदय होना संसार का क्रम मालूम होता है ।]

संसार का क्रम

फ़ायदे का सपना

एक गाँव में श्रीदेवी नामक एक औरत थी। उसके दो बेटे थे। बड़े का नाम रंगनाथ और छोटे का नाम श्रीनिवास था। श्रीनिवास का बायाँ पैर कमज़ोर था, इसलिए वह लाठी की मदद से ही धीरे धीरे चल सकता था। श्रीदेवी को इस बात की चिंता थी कि उसका दूसरा बेटा खुद अपना पेट भरने में असमर्थ है।

इस चिंता के मारे वह बीमार पड़ी। एक दिन उसने रंगनाथ को बुलाकर समझाया–"बेटा, श्रीनिवास की जिम्मेदारी तुम्हीं पर है, न मालूम क्या करनेवाले हो?" यों कहते वह रो पड़ी।

रंगनाथ अपनी माँ की आँखों में आँसू देख नहीं पाया। उसने कहा–"अच्छी बात है, माँ, मैं उसे कोई कमी होने न दूंगा।" अपने बेटे से यह आश्वासन पाकर श्रीदेवी ने खुशी के साथ प्राण त्याग दिये।

दोनों भाइयों को अब खाना बनाकर खिलानेवाली कोई न थी। अड़ोस-पड़ोस के लोगों ने रंगनाथ को सलाह दी कि वह शादी करे। रंगनाथ ने कनकलता नामक कन्या से शादी कर ली।

कनकलता श्रीनिवास को देखते ही खीझ उठती थी। वह जब-तब चुभनेवाली बातें कह बैठती थी कि उसका पति मेहनत करके कमा लाता है तो श्रीनिवास बैठे-बैठे खूब उड़ा रहा है। श्रीनिवास चुपचाप ये बातें सुन लेता, पर वह कभी अपने बड़े भाई से शिकायत नहीं करता था।

धीरे धीरे कनकलता श्रीनिवास से घृणा करने लगी। एक दिन उसने श्रीनिवास को डांट दिया–"घर में कुत्ते की भांति न पलोगे तो कहीं क्यों नहीं जाते?"

श्रीनिवास का दुख उमड़ पड़ा, उसे सांत्वना देनेवाला कोई न था। घर की

सरोजा परवार

ज़िंदगी से वह ऊब उठा। भाभी जो खाना खिलाती थी, उससे उसका पेट भरता न था। इसलिए एक रात को वह घर छोड़कर चला गया।

श्रीनिवास लाठी के सहारे चलते रास्ते में कंद-मूल खाते चार दिन बाद राजधानी नगर में पहुंचा। तब तक अंधेरा फैल चुका था। उसने सोचा कि दूसरे दिन राजा के दर्शन करके उनसे कुछ याचना करे, तब उस रात को वह एक घर के सामने चबूतरे पर लेटकर सो गया।

नींद में उसने एक सपना देखा। सपने में उसका पैर लंगड़ा न था, उल्टे उसके पास बहुत-सा धन है। वह लेटकर सो रहा था, तब चार चोर आये। छुरी दिखाकर उसे डराया और उसके पास से सारा धन खींचकर ले जा रहे हैं। उस वक़्त वह ज़ोर से चिल्ला उठा—"चोर! चोर! पकड़ो!"

श्रीनिवास चिल्ला तो पड़ा, साथ ही अपनी चिल्लाहट को सुन वह आप ही जाग उठा। जिस वक़्त वह चिल्लाया, उस वक़्त बगल में स्थित जमीन्दार के घर में एक चोर घुस गया था। उसने सोचा कि किसी ने उसे देख लिया है, इसलिए वह घबराये हुए धीरे से गली में आ पहुँचा। इस बीच श्रीनिवास की चिल्लाहट सुनकर कई लोग अपने घरों से बाहर दौड़े आये और चोर को पकड़ लिया। वे लोग चोर तथा चोर को पकड़ने में मदद पहुँचानेवाले श्रीनिवास को भी राजदरबार में ले गये।

उन लोगों ने राजा को श्रीनिवास का परिचय देते हुए कहा—"इसीने चोर को देखा है, बेचारा लंगड़ा है, इसलिए पकड़ न पाया और चिल्ला उठा।"

राजा ने श्रीनिवास का सारा समाचार जानकर रंगनाथ और कनकलता को बुला भेजा। श्रीनिवास के प्रति लापरवारी दिखाने के कारण उन्हें डांटा। श्रीनिवास को अच्छा पुरस्कार देकर अपने भाई के साथ भेज दिया।

[१६]

[सुरंग-दुर्ग में घुसे हुए भेड़ियों को देख गुरु भल्लूक के अनुचर भय कंपित हो उठे। खड्गवर्मा और जीवदत्त ने सुरंग में प्रवेश करके वृकेश्वरी देवी के रूप में गुरु भल्लूक को आदेश दिया कि वह जंगल में चला जाय। वह जंगल की ओर चल पड़ा। उस वक्त भूखे भेड़ियों ने उसका पीछा किया। बाद...]

गुरु भल्लूक की चिल्लाहट और भेड़ियों के गर्जन सुनकर खड्गवर्मा, जीवदत्त तथा उनके साथ रहनेवाले समरबाहू और चन्दू भी जल्दी सुरंग के ऊपर आ पहुँचे। तब उन्हें जंगल की ओर भागनेवाले भल्लूक जाति के लोग तथा उन लोगों के पीछे दौड़नेवाला गुरु भल्लूक भी दिखाई दिये। गुरु भल्लूक के पीछे दौड़नेवाले भेड़िये भी दिखायी दिये।

खड्गवर्मा इस दृश्य को देख चकित हो बोला—"मुझे इस बात के लिए हँसी आ जाती है कि चार भेड़ियों का सामना करने की हिम्मत न रखने की वजह से वृकेश्वरी देवी के इतने सारे भक्त भागते जा रहे हैं।"

"तुम्हें भले ही हंसी आती हो, पर गुरु भल्लूक की जान के लिए खतरा बना हुआ है, भेड़ियों के द्वारा उसकी हड्डी-पसली

खड्गवर्मा एक और बाण का निशाना लगाने जा रहा था, तभी समरबाहू अनिच्छापूर्वक सर हिलाते बोला–"हुज़ूर, उन भेड़ियों को क्यों मार डालते हो? गुरु भल्लूक और उसके दल के लोगों को ये भेड़िये खुद खा डालेंगे, तब सबका पिंड छूट जायगा।"

"समरबाहू, गुरु भल्लूक और उसके दल के लोगों के मरने मात्र से सबका पिंड छूट जाता है तो खुशी की बात और क्या हो सकती है? हम एक महान कार्य को साधने के लिए विन्ध्याचल की ओर निकल पड़े हैं। रास्ते-भर में हमें ऐसी अड़चनों का बराबर सामना करना पड़ रहा है।" जीवदत्त ने कहा। तब वह खड्गवर्मा की ओर मुड़ कर बोला–"हमें यहाँ से जल्द निकलना होगा। गुरु भल्लूक को भेड़ियों से बचा कर जंगल के तालाब की ओर भागनेवाले उसके शिष्यों को समझा-बुझाकर हम अपने रास्ते चले जायेंगे।" यों कहते जीवदत्त गुरु भल्लक की ओर दौड़ पड़ा। बाक़ी लोग उसके पीछे हो लिये।

जीवदत्त को निकट आये देख तीन भेड़ियों ने अपनी दाढ़ें बढ़ा कर उसकी ओर क्रोध भरी दृष्टि से देखा, गरज कर जंगल की ओर भाग खड़े हुए। तब भागनेवाले

तोड़ कर खाते समय हमारा देखना अन्याय होगा। तुम उन भेड़ियों को डरा कर यहाँ से भगा दो या मार डालो।" जीवदत्त ने सुझाया।

खड्गवर्मा ने बाण का निशाना करके सबसे पीछेवाले भेड़िये पर प्रहार किया। सनसनी आवाज़ के साथ बाण जाकर भेड़िये की बगल में जा घुसा। भेड़िया चिल्ला कर ऊपर उछल पड़ा और नीचे गिरकर छटपटाने लगा। इसे देख बाक़ी भेड़ियों में से एक झट मुड़ कर दम तोड़ने वाले भेड़िये पर झपट पड़ा और उसे नोच-नोचकर खाने लगा। यह दृश्य बड़ा ही भयंकर लग रहा था।

गुरु भल्लूक को पुकार कर जीवदत्त ने कहा–"अबे गुरु भल्लूक! रास्ता ऊबड़-खाबड़ है, इस पर ध्यान दिये बिना यूँ ही दौड़ जाओ तो तुम अपने हाथ-पैर तोड़ बैठोगे। यक़ीन करो, तुम्हारी जान के लिए कोई खतरा नहीं है, ठहर जाओ।"

यह चेतावनी सुनकर गुरु भल्लूक ठहर गया और उसने पीछे मुड़ कर देखा। उसके मन में यह बात बैठ गयी कि वह अपने दुश्मन से बचकर भाग नहीं सकता और उनकी शरण में जाने से वह अपने प्राण बचा सकता है। जीवदत्त और उसके अनुचरों के निकट आते ही गुरु भल्लूक ने हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और निवेदन किया–"महाशय, मेरे प्राण न लीजिएगा! मैंने जो पाप किये हैं, उनका प्रायश्चित्त करने को तैयार हूँ। आप जो आज्ञा दे, उसका पालन करूँगा।"

"मैं नहीं जानता कि प्रायश्चित करने से तुम्हारे सारे पाप धुल जायेंगे।. लेकिन इसके पूर्व जो लोग तुम्हारे हाथों में मारे गये हैं, वे जी कर तो वापस नहीं आयेंगे न? अरे, तुम्हें तो इस जंगल में खेतीबारी करके अपना पेट पालना था, लेकिन तुम नाहक़ इन भेड़ियों के पालने और वृकेश्वरी की उमासना में अपना वक़्त क्यों बरबाद करते हो?" जीवदत्त ने पूछा।

"लोगों पर अधिकार चलाते आराम की ज़िंदगी बिताने के लिए मुझे इससे बढ़िया उपाय दिखायी न दिया। साहब, आप लोगों के यहाँ पहुँचने तक मेरे दिन आराम से बीत गये, पर इसके बाद न मालूम क्यों, वृकेश्वरी देवी की कृपा मुझ पर से उठती गयी।" गुरु भल्लूक ने हतोत्साह स्वर में कहा।

"तो अब तुम क्या करने जा रहे हो? तुम्हारे अनुचर सब तुम को भेड़ियों के बीच छोड़ कर जंगल में भाग गये हैं।" खड्गवर्मा ने पूछा।

"साहब, मेरे शिष्यों में से कोई भी मुझे छोड़ कर भाग नहीं गये हैं। वे सब

जंगल में तालाब के पास दर्शन देनेवाली वृकेश्वरी देवी की पूजा करने गये हैं। हमारी आराध्या देवी थोड़ी देर पहले सुरंग के दुर्ग से अंतर्धान हो गयी है।" गुरु भल्लूक ने कहा।

"चलो, वहीं पर चलेंगे। मैं उसी देवी से पूछूंगा कि वह तुम्हें किस प्रकार का दण्ड देने को कहती है।" यों कहते जीवदत्त आगे बढ़ा।

सब लोग थोड़ी दूर आगे बढ़े, अब वे जंगल के निकट पहुँचने जा रहे थे, तभी पेड़ों की ओट में से भल्लूक दल के लोग चिल्लाते हुए उनकी ओर आने लगे। उनमें से आगे आनेवाले लोग अपने गुरु के साथ खड्गवर्मा तथा जीवदत्त को देखते ही भयकंपित हो उठे और दूसरी ओर भागने को हुए, तब गुरु भल्लूक ने चिल्ला कर कहा—"तुम लोग भागो मत। हमारी जान का कोई खतरा नहीं है। वृकेश्वरी की कृपा से इन साहबों ने हमें अभय प्रदान किया है कि ये हमारी किसी प्रकार की हानि न करेंगे।"

अपने गुरु के मुँह से ये बातें सुनते ही उस दल में से चार लोग खड्गवर्मा और जीवदत्त के निकट आये और अपने गुरु भल्लूक से बोले—"गुरु नायक! जंगल में तालाब के पास ऊँटवाले चार-पाँच आदमी हैं। उनका नेता स्वर्णाचारी ने हमारे दल के दो आदमियों को मार डाला और पाँच आदमियों को वन्दी बनाया है। हम उनसे बचकर यह खबर आपको सुनाने के लिए दौड़े आये हैं।"

स्वर्णाचारी का नाम सुनते ही खड्गवर्मा, जीवदत्त और समरबाहू के आश्चर्य की कोई सीमा न रही। कहीं किसी पहाड़ पर दुर्ग का निर्माण करनेवाले प्रयत्न में रहनेवाला स्वर्णाचारी चार-पांच अनुचरों को साथ ले तालाब के पास क्यों आया होगा? यह बात उनकी समझ में न आयी।

खड्गवर्मा तथा जीवदत्त स्वर्णाचारी को यह आश्वासन दे चल पड़े थे कि वे दुश्मनों

से समरबाहू की रक्षा करेंगे। उनके चले आने के बाद स्वर्णाचारी के निवास में बड़ी खलबली मच गयी। उस प्रदेश पर वीरसिंह नामक राजा राज्य करता था। उसकी राजधानी बीरपुर तथा स्वर्णाचारी के द्वारा दुर्ग का निर्माण करनेवाले पहाड़ी प्रदेश के बीच एक बड़ा जंगल था। वीरसिंह का विचार था कि उस जंगल में निवास करनेवाले सभी जंगलियों पर उसी का अधिकार है। जब-तब उन पर हमला करके उनसे शुल्क के रूप में जानवरों के चमड़े, जंगली चावल, तरकारी, कंद-मूल इत्यादि वसूल किया करता था। इन तरीकों के द्वारा वह अपने को उन जंगली जातियों का प्रभु मानता था और प्रसन्न रहता था।

वीरसिंह को इस बीच गुप्तचरों द्वारा यह खबर मिली कि जंगल के पहाड़ी प्रदेश में ऊँट वाहनधारी लोग आये हुए हैं। इसके बाद यह समाचार भी उसे मिला कि भल्लूक चर्मधारी दल जंगल में एक दुर्ग पर अधिकार करके आसपास के लोगों को गुलाम बना रहे है और उनसे बेगारी ले रहे हैं।

वीरसिंह ने पहले ऊँटोंवाले तथा भल्लूक चर्मधारियों के प्रति कोई विशेष ध्यान न दिया। उसने सोचा कि जंगल में ये दोनों दल आपस में लड़ कर एक दूसरे का अंत कर बैठेंगे और उनमें जो विजयी होंगे, वे लोग शक्तिशाली हो, तब उनके बारे में सोचा जा सकता है।

इधर एक सप्ताह पहले वीरसिंह की राजधानी से अजायब घर के अधिकारी दस सैनिकों को साथ ले नये जानवरों को पकड़ लाने के हेतु जंगल में पहुँचे। उन लोगों ने जाल बिछा कर तथा पिंजड़े रखकर दुपहर तक जंगली पक्षियों तथा बाघों को पकड़ लिया, तब एक नदी के किनारे आराम से बैठ कर खाना खा रहे थे।

राजा के सैनिकों में से एक पहले ही खाना समाप्त करके जंगल में घूम रहा

था कि कहीं दुपहर के समय पेड़ों की डालों में विचित्र पक्षी आँखों में पड़ जाय। चलते-चलते वह दूर चला गया। उसे एक जगह पेड़ से बंधे चार ऊँट एक साथ दिखाई दिये।

उस सैनिक ने ऊँटों के बारे में काफ़ी सुन रखा था, मगर देखा न था। उसका विचार था कि ऊँट कहीं रेगिस्तान में रहते हैं। लेकिन वीरपुर राज्य के जंगल में उन्हें देख आश्चर्य में आ गया, तुरंत अपने अधिकारी के पास लौट कर यह समाचार उसे सुनाया।

"अरे ऊँट? कहाँ पर हैं? हमारे अजायब घर में ऊँट नहीं हैं, यदि एक ऊँट और एक ऊँटनी रहें तो हमारे राजा का यश बढ़ जायगा। राज्य का नाम ऊँचा होगा।" यों कहते उत्साह में आकर वह कांपने लगा।

इस पर सैनिक ने निराश हो कहा– "साहब, वे ऊँट चार रस्सियों से पेड़ों के साथ बँधे हुए हैं। यह बात मैंने बतायी है, पर शायद आपने सुनी नहीं है। वे जानवर स्वेच्छापूर्वक जंगल में घूमनेवाले नहीं हैं, उनके कोई मालिक हैं।"

"मालिक हो तो हमें क्या? जानते हो, इस वीरपुर राज्य की प्रजा, जंगल, पानी, तथा सब पर–अगर एक वाक्य में बताना हो तो इस राज्य पर व्याप्त आकाश के भी मालिक हमारे महाराजा वीरसिंह हैं। तुम में से तीन-चार लोग जाकर उन ऊँटों को हाँक लाओ। तुमने उनके मालिकों की बात बतायी; अगर वे दिखायी दे तो उनसे कह दो कि वे मेरे दर्शन कर ले।" अजायब घर के अधिकारी ने बताया।

सैनिकों के मन में डर लगा हुआ था, फिर भी अपने अधिकारी की आज्ञा का पालन करना अनिवार्य था, इसलिए चार सैनिक वहाँ से निकल पड़े और ऊँटों के स्थान पर पहुँचे। ऊँट पहले की भांति पेड़ों के नीचे घास चरते दिखायी दिये।

निकट में कहीं उनके मालिकों का पता न लगा। सैनिक हिम्मत के साथ गये, पेड़ों के साथ बंधे ऊँटों के रस्सों को खोलने लगे। उस वक़्त नये आदमियों को देख घबराया हुआ एक ऊँट विकृत रूप से हिनहिनाते पिछली टांगों से पेड़ों पर लात मारने लगा। उसकी देखादेखी बाक़ी ऊँट भी हो-हल्ला मचाने लगे।

सबेरे ही जंगल में शिकार खेलने के हेतु समरबाहू के अनुचर आये हुए थे। शिकार खेलकर वे लोग थक गये और निकट के एक तालाब के पास वे आराम कर रहे थे। उन लोगों ने ऊँटों की चिल्लाहट सुनी। सोचा कि ऊँटों पर शायद बाघ या सिंह ने हमला किया होगा। इसलिए वे लोग तलवार खींचकर दौड़ते हुए ऊँटों के पास पहुँचे।

ऊँटों के रस्सों को खोलनेवाले सैनिकों ने समरबाहू के अनुचरों की आहट सुनी और अपने सिर उठाकर उस ओर देखा। उन सैनिकों ने देखा कि समरबाहू के अनुचर तलवार खींचे तेज़ी के साथ उनकी ओर बढ़े आ रहे हैं। तुरंत सैनिक भी तलवार खींचकर थोड़ा पीछे हटकर लड़ने को तैयार हो गये।

समरबाहू के अनुचरों में से एक ने क्रोध से दांत मींचते गरजकर कहा-"तुम

लोग कौन हो? सैनिकों की पेशकें पहने चोर जैसे लगते हो। हमारे ऊँटों को चुरा ले जाना तुम जैसे कमीनों से बन नहीं पड़ेगा।"

"हम लुटेरे नहीं, महाराजा वीरसिंह के सैनिक हैं। हम तुम लोगों के ऊँटों को चुराकर नहीं ले जा रहे हैं। तुम लोगों ने चारे का शुल्क अदा किये बिना हमारे देश के जंगल में ऊँटों को चराया है, इसलिए हम ऊँटों को हाँककर ले जा रहे हैं।" एक सैनिक ने उत्तर दिया।

"महाराजा वीरसिंह कौन है? इस प्रदेश पर महाराजा समरबाहू का पूरा

अधिकार है। जानते हो? उनके ऊँटों को चुराने आये हुए तुम लोगों को हम कड़ी सज़ा देंगे। तुम लोग अपने हथियार नीचे डालकर हमारे अधीन में आ जाओ।" यों कहते समरबाहू के अनुचर आगे बढ़े।

भागने का मौक़ा न देख वीरसिंह के सैनिकों ने समरबाहू के अनुचरों का सामना किया। उस लड़ाई में दो सैनिक मर गये। एक घायल हुआ। चौथा व्यक्ति बच कर भाग निकला। उसीने अजायब घर के अधिकारी के पास जाकर यह खबर सुनायी।

सैनिक के शरीर पर जहाँ तहाँ खून के दाग देखकर अजायब घर के अधिकारी ने पूछा–"यह तो बड़ा विचित्र मालूम होता है। मैंने जो शास्त्र पढ़ा, उसमें कहीं यह बताया नहीं गया है कि जानवर मांसहारी हैं। तुम्हारे साथ गये हुए और तीन सैनिकों को क्या जानवरों ने मारकर खा डाला है?'

"साहब, ऊँटों ने मुझे घायल नहीं बनाया, उनके मालिकों ने मुझ पर प्रहार किया है। मेरे साथ गये तीन सैनिक दुश्मन की तलवार के शिकार हो गये हैं। वे लोग तलवार चलाने में बड़े ही निपुण मालूम होते हैं।" सैनिक ने बताया।

"मैं इस बात पर यक़ीन नहीं कर सकता कि तलवार की लड़ाई में हमें हरानेवाले वीर कहीं हैं?" यों कहते अजायब घर का अधिकारी तलवार खींच कर खड़ा हो गया। उसके साथ बाक़ी सैनिक भी उठ खड़े हुए।

घायल सैनिक ने उस दिशा में देखा जिस दिशा से वह भाग आया था। अपनी ओर आनेवाले समरबाहू के सैनिकों को देख वह चिल्ला उठा–"साहब, अब जल्द ही आपकी शंका दूर हो जायगी। देखिये, वे लोग इसी ओर चले आ रहे हैं।"

अजायब घर का अधिकारी अपने सैनिकों को चेतावनी दे समरबाहू के अनुचरों की ओर चल पड़ा। (और है)

विजय चिह्न

हठी विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आया। पेड़ से शव उतारकर कंधे पर डाल सदा की भाँति चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगा, तब शव में स्थित बेताल ने कहा–"राजन, तुम जो श्रम उठाते हो, वह प्रशंसनीय है, लेकिन इससे ज्यादा श्रम की बात जानता पर उत्तम ढंग से शासन करने की है। इसके उदाहरण स्वरूप में तुम्हें एक युवराज की कहानी सुनाता हूँ। श्रम को भुलाने के लिए सुनो।"

बेताल यों कहने लगा: प्राचीन काल में यवन देश में एक बढ़िया राज्य था। उस देश के यवन राजा को लोग आदर्श राजा कहा करते थे। उसके शासन में जनता को कोई तक़लीफ़ न थी और लोग आराम से अपने दिन बिताया करते थे।

उस राजा के दो पुत्र थे। राजा की यह इच्छा थी कि उसकी मृत्यु के

बेताल कथाएँ

बाद भी शासन इसी ढंग से चले और जनता को कोई तक़लीफ़ न हो। वह यह जानना चाहता था कि उसके दो पुत्रों में से कौन गद्दी पर बैठने योग्य है। इसके लिए उसने एक अनोखा उपाय किया। वह यह कि अपने जीवनकाल में ही अपने पुत्रों को शासन करने का मौक़ा दिया जाय और जनता को अपने पसंद के शासक को चुनने का अवसर दिया जाय। हर साल राजा का चुनाव होगा। दोनों राजकुमार चुनाव लड़ेंगे। ऐसे लोगों में राज मुद्रांकित पत्र बाँटे जायेंगे, जो बालिग हों। चुनाव के दिन हर गाँव में दो पेटियाँ रखी जायंगी। उनमें से एक बड़े राजकुमार की होगी और दूसरी छोटे राजकुमार की। लोग गुप्त रूप से अपने मतदान के पत्र किसी एक पेटी में डाल देंगे।

लेकिन कौन पेटी किसकी है? इसका पता लगाने के लिए एक पेटी पर एक राजकुमार का चिह्न अंकित किया जाएगा। उस देश का चिह्न सिंह का चिह्न था। प्रथम चुनाव में बड़े राजकुमार की पेटी पर सिंह का चिह्न अंकित किया गया।

राजकुमारों को राजा ने यह अनुमति दी कि चुनाव के पूर्व दोनों राजकुमार देश के चारों तरफ़ जाकर जनता में प्रचार कर सकते हैं।

बड़े राजकुमार ने लोगों के बीच जाकर यह आश्वासन दिया कि यदि जनता उसे चुने तो खेतीबारी की सिंचाई में वृद्धि करने के लिए नहरें और तालाब खुदवा देगा और जनता की आजीविका के लिए आवश्यक प्रबंध करेगा। साथ ही गाँव गाँव में अस्पताल और पाठशालाएँ खोल देगा। अपने पिता के पदचिह्नों पर चलकर जनता को खुश रखने का प्रयत्न करेगा।

दूसरे राजकुमार ने आश्वासन दिया कि वह शत्रुराजाओं का नाश करेगा और अपने राज्य का विस्तार करके अपने देश का यश बढ़ायेगा।

चुनाव के बाद यह बात स्पष्ट हो गयी कि अधिकांश जनता बड़े राजकुमार के पक्ष में है।

छोटे राजकुरार ने अपने पिता से कहा–"अगर आप सिंह का चिह्न मेरी पेटी पर अंकित करवा दिये होते तो जनता मुझे चुनती। इस चिह्न के कारण ही बड़े भाई की विजय हो गयी है!"

"अरे पगले! चिह्न में क्या रखा है? तुम्हारे बड़े भाई ने जनता को जो वादे किये, वे उन्हें पसंद आये। इसलिए जनता ने उसे राजा चुना। चाहो तो तुम अगले वर्ष सिंह का चिह्न ले लो। तब पता चल जायगा कि किसकी विजय हो सकती है।" राजा ने समझाया।

बड़े राजकुमार ने एक वर्ष तक राज्य किया। चुनाव के समय उसने जनता को जो वादे किये, उनका पालन किया। उसके शासन से भी जनता संतुष्ट थी।

एक वर्ष के पूरा होने पर फिर राजा के पद के लिए चुनाव का समय निकट आया। इस बार सिंह का चिह्न दूसरे राजकुमार की पेटियों पर लगवाया गया। इस बार भी दोनों राजकुमारों ने देश के कोने-कोने में जाकर प्रचार किया।

चुनाव समाप्त हुआ। जनता ने इस बार दूसरे राजकुमार को चुना। दूसरे राजकुमार ने एक वर्ष के भीतर देश के सामने अनेक कठिन समस्याएँ उपस्थित कीं; अड़ोस-पड़ोसे के देशों के साथ दूसरे
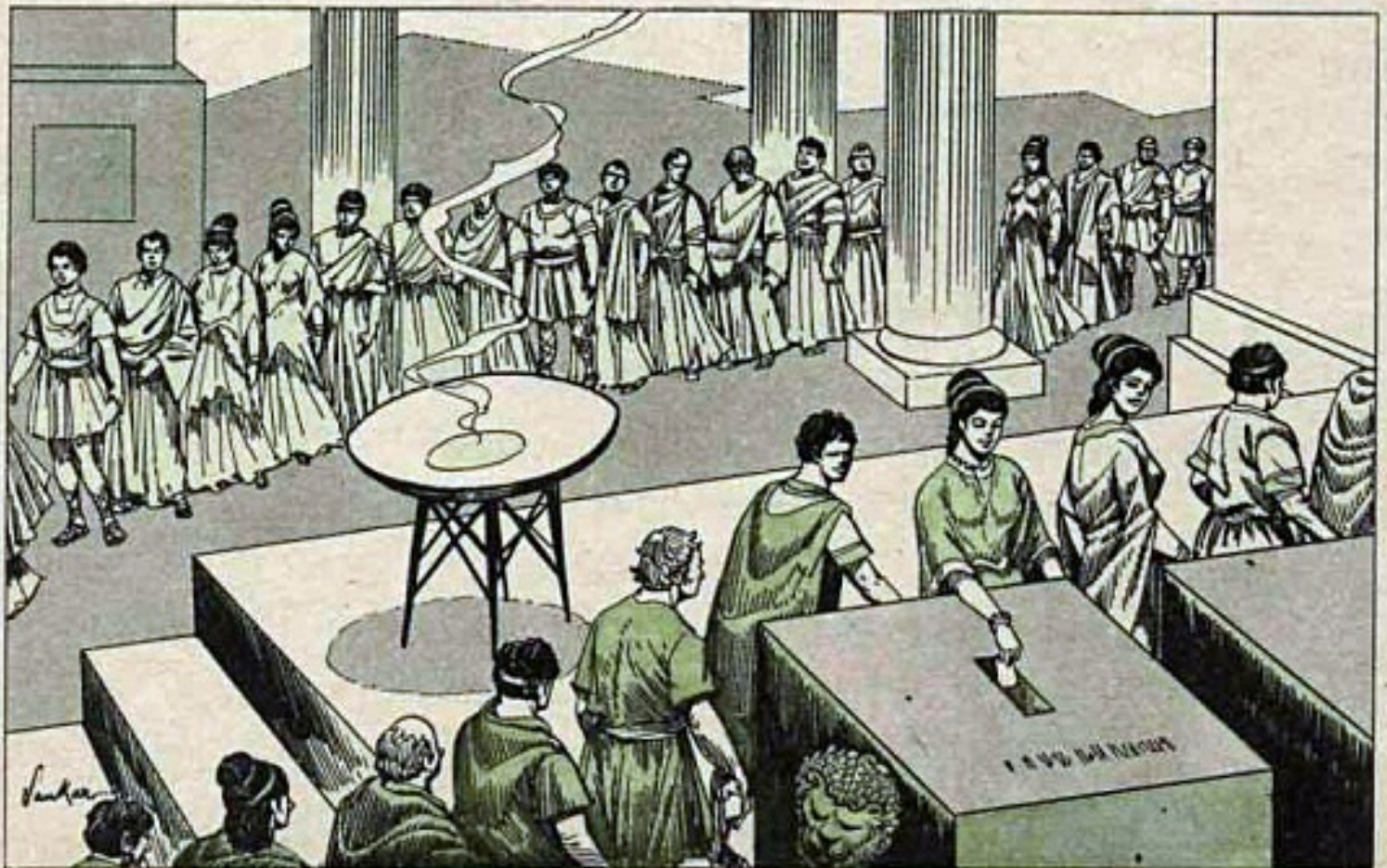
बड़े राजकुमार ने कहा कि इस बार उसे सिंह का चिह्न मिल जाना न्याय संगत है।

राजा ने बड़े राजकुमार को समझाया— "पगले, चिह्न में क्या रखा है? पहली बार जनता ने इसलिए तुम्हें चुना कि तुम गद्दी के वारिस हो। दूसरी बार इसलिए तुम्हारे छोटे भाई को चुना कि उसका शासन कैसा होगा, यह देख ले! मगर जनता ने अब तुम दोनों के शासन को देख लिया है। इसलिए चिह्न की जरूरत के बिना ही जनता इस बार तुम्हें चुन लेगी। आखिर जनता मूर्ख थोड़े ही है!"

राजकुमार ने दुश्मनी मोल ली। उन देशों के साथ युद्ध की घोषणा करके जनता पर अनेक प्रकार के कर लगाये। विभिन्न पेशेवर लोगों को सैनिकों के लिए आवश्यक चीज़ें तैयार करने में नियुक्त किया, जिससे घरेलू चीजों की माँग बढ़ गयी। खेतों में सिंचाई की समुचित सुविधाएँ देखने वाला कोई न रहा, इस कारण फसलें नष्ट हो गयीं। परंतु देश का पूरा नुक़सान होने के पहले ही फिर चुनाव आ गये।

इस बार राजा ने सिंह का चिह्न बड़े राजकुमार को देना चाहा। लेकिन छोटे राजकुमार ने इस पर आपत्ति उठायी।

अपने पिता की बातों पर विश्वास करके बड़े राजकुमार ने सिंह के चिह्न को पाने के लिए विशेष हठ नहीं किया और उसे अपने छोटे भाई को दिया।

तीसरी बार के चुनाव में भी छोटा राजकुमार जनता के द्वारा चुना गया। राजा ने तुरंत राज्य के दो भाग किये और दोनों पुत्रों में बाँट दिया। वह सन्यासी की पोशाकें पहनकर मठ में जा पहुँचा।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर कहा— "राजन, मेरे मन में थोड़े संदेह हैं। जनता ने तीसरे चुनाव में भी अयोग्य छोटे राजकुमार को क्यों चुना? यदि राजा

अपने बड़े पुत्र को राज्य सौंप देता तो उसे रोकनेवाला कोई न था। राजा ने राज्य को दो भागों में क्यों बाँट दिया? उल्टे उसने संन्यासी की पोशाकें पहनकर मठ में क्यों प्रवेश किया? इन संदेहों का समाधान जानते हुए भी न दोगे तो तुम्हारा सिर टुकड़े-टुकड़े हो जायगा।"

इस पर विक्रमार्क ने यों कहा—"जनता ने अच्छे शासन का अनुभव तो किया, पर उसके स्वभाव से वे परिचित नहीं हो सके! वे यह नहीं जानते कि अपने भले-बुरे के साथ शासन का भी कोई संबंध होता है! उन लोगों ने केवल सिंह के चिह्न का ही आदर किया। यह बात भी स्पष्ट हो गयी कि छोटे राजकुमार का शासन जितना भी बुरा क्यों न हो, जब तक उसे सिंह का चिह्न प्राप्त होता रहेगा, तब तक जनता उसे चुनती जाएगी। इन चुनावों ने राजा की आँखें खोल दीं। उन्होंने जो सोचा था कि जनता मूर्ख नहीं है, वह गलत साबित हुई। अलावा इसके राजा ने यह समझ लिया कि जनता के बारे में उसकी अपेक्षा छोटा राजकुमार ही अच्छा जानता है। जनता अज्ञानवश ही सही अगर छोटे राजकुमार को चुनती है तो ऐसी हालत में उसे राज्य से वंचित रखना ठीक नहीं है। तब अपने पद-चिह्नों पर चलकर समर्थता के साथ शासन करने वाले बड़े राजकुमार को राज्य से वंचित रखना भी अन्याय होगा। इसलिए राजा ने राज्य के दो टुकड़े किये। अब उसके मठ में प्रवेश करने का कारण राज्य से विरक्त हो जाना ही है। उसने जीवन पर्यंत देश का शासन अच्छे ढंग से किया और आदर्श राजा की ख्याति प्राप्त की; फिर भी वह जनता में राजकीय ज्ञान नहीं करा पाया और उनमें दुष्ट शासन का विरोध करने का ज्ञान भी न रहा। इसलिए राजा विरक्त हो गया।"

राजा के इस प्रकार मौन भंग होते ही बेताल शव के साथ गायब हो पेड़ पर जा बैठा। (कल्पित)

उपाय

प्राचीन काल में एक राजा प्रति वर्ष पंडितों का सम्मान करता और दान-पुरस्कार देकर उनका सत्कार भी करता। लेकिन एक वर्ष किसी कारण से राजा का खज़ाना एक दम खाली हो गया। राजा के मन में यह समस्या उत्पन्न हो गयी कि पंडितों का सत्कार कैसे किया जाय!

राजा ने अपने मन की बात मंत्री से कह दी। मंत्री ने सोचकर बताया कि वह इस समस्या को हल करेगा। पंडितों के सत्कार का दिन आया। पुरस्कारों के वास्ते नये व पुराने पंडित अधिक संख्या में आ पहुँचे।

मंत्री ने नये पंड़ितों के लिए अलग और पुराने पंडितों के ठहरने के लिए अलग निवासों का प्रबंध किया। मंत्री पहले नये पंडितों के निवास में गया और बोला-"राजा का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। इसलिए इस वर्ष नये पंडितों का सत्कार नहीं हो सकेगा। आप सब जा सकते हैं।"

इसके बाद वह पुराने पंडितों के बसेरे में गया और बोला-"राजा का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। इसलिए इस वर्ष केवल नये पंडितों का ही सत्कार कर रहे हैं।" यह कहकर मंत्री ने पुराने पंडितों को भी भेज दिया।

संकल्प सिद्धि

बात बहुत पुरानी है। एक बार एक राजा के महल के पास एक बैरागी आया और बोला—"मैं अक्ल तो रखता हूँ, पर इसका उपयोग करनेवाले कोई नहीं हैं। क्या करें?" बैरागी रोज़ ये ही शब्द कहकर चल देता था।

राजा ने एक दिन उस बैरागी को बुलाकर पूछा—"तुम रोज़ जो बातें कहते हो, उनका क्या मतलब है?"

"राजन, आप सब्रता के साथ मुझपर विश्वास करके मेरे लिए आवश्यक धन देंगे, तो मैं आपके खज़ाने को भर दूंगा। मैं आपसे जितना धन लूंगा, उसके दस गुने आपको लाभ होगा। गृहस्थ धर्म को छोड़ने के बाद मेरे मन में यह विचार पैदा हुआ है।" बैरागी ने उत्तर दिया।

राजा ने बैरागी के लिए आवश्यक धन देने को मान लिया। मगर मंत्री ने गुप्त रूप से राजा से बताया—"महाराज, इस में कोई धोखा हो सकता है! बैरागियों पर विश्वास नहीं करना चाहिए।" फिर भी राजा ने बैरागी को धन देकर भेज दिया।

एक साल बाद बैरागी फिर राजा के पास आकर बोला—"महाराज, मुझे याद रखते हैं न? मैं अपने विचार को अमल कर रहा हूँ। मेरे लिए इस वक़्त और थोड़े धन की आवश्यकता आ गयी है।"

"महाराज, इसको कारागार में बंद करने की अनुमति दीजिए।" मंत्री ने गुप्त रूप से राजा से पूछा।

"अभी इसका समय नहीं आया है। इस बैरागी ने हम से बताया कि हम उस पर विश्वास करे और सब्र करें।" यों मंत्री से कहकर राजा ने बैरागी को दूसरी बार भी धन देकर भेज दिया।

कौसलेंद्र नाथ

एक वर्ष और बीत गया। बैरागी फिर राजा की सेवा में पहुँचा और बोला–"महाराज, मेरा कार्य अब समाप्त होने को है। थोड़े से धन की कमी पड़ गयी है। इसलिए आपके पास आया हूँ।"

मंत्री ने आवेश में आकर कहा–"हे कपट बैरागी! तुम चिकनी-चुपड़ी बातें बनाकर धन ले जा रहे हो? असली बात बताओ, वरना तुमको कारागार की सजा दी जाएगी।"

राजा ने इस बार भी मंत्री को शांत किया और बैरागी को धन देकर भेज दिया।

एक साल बाद, बैरागी फिर आया।

"क्या तुम्हें और धन चाहिए?" राजा ने बैरागी से पूछा। मंत्री बैरागी पर तलवार चलाने को तैयार हो गया।

"महाराज! आपकी सब्रता के लिए धन्यवाद! मेरा काम पूरा हो गया है। आप मेरे साथ चलिए।" बैरागी ने कहा।

राजा बैरागी के साथ चलने को तैयार हो गया, इसे देख मंत्री ने समझाया–"यह बैरागी हम दोनों को ही बुला रहा है। कहाँ जाना है? किसलिए जाना है? यह सब जाने बिना इसके पीछे चलना उचित प्रतीत नहीं होता, महाराज।"

"महा मंत्री, सब्र करने तथा विश्वास करने के लिए मैंने पहले ही मान लिया है। क्या तुम यह सोचते हो कि ज़रूरत पड़ने पर मैं अपनी रक्षा आप नहीं कर पाऊँगा?" राजा ने कहा।

"महा मंत्री अगर डरते हैं तो अपने साथ दो अंगरक्षकों को भी लेते आइये, महाराज।" बैरागी ने उत्तर दिया।

"मुझे अंगरक्षकों की कोई ज़रूरत नहीं है, चलो।" राजा ने कहा। पर मंत्री ने गुप्त रूप से अपने पीछे चलने के लिए दो अंगरक्षकों को आदेश दिया।

बैरागी राजा और मंत्री को पहाड़ और जंगल पार कराकर समुद्र के किनारे ले गया। वहाँ पर एक छोटी नाव थी।

बैरागी, मंत्री और राजा उस नाव पर सवार हुए। इनके साथ सिर्फ़ दो मल्लाहों के लिए ही उस नाव में जगह थी। इसलिए अंगरक्षकों को समुद्र के किनारे ही रह जाना पड़ा।

नाव एक छोटे टापू में जा पहूँची। उस टापू भर में एड़ी तक राख पड़ी हुई थी। राख के आगे बकों का झुण्ड उड़ रहा था। राख के ढेर के बीच में से एक पगडंडी थी। पगडंडी से होकर पहले बैरागी चल पड़ा। उसके पीछे तलवार की मूठ पर हाथ रखे मंत्री तथा राजा चल पड़े।

"अरे, कोई जादू का टापू मालूम होता है? हमें यहाँ पर क्यों बुला लाये हो?" मंत्रीं ने बैरागी से पूछा।

"आप जल्दबाजी में न आइयेगा। यह एक छोटा सा टापू है। ज्यादा लोगों के आ जाने से राख उड़ जाएगी, बक घबरा जायेंगे। इसीलिए मैंने अंगरक्षकों के आने से मना किया है।" बैरागी ने कहा।

बैरागी एक जगह रुक गया और वहाँ के एक लोहे के किवाड़ को उठाया। वहाँ पर नीचे की ओर सीढ़ियाँ थीं। बैरागी ने राजा से कहा कि वह उतर कर देख आवे कि नीचे क्या क्या है? राजा के लौट आने तक मंत्री अपनी तलवार को बैरागी की पीठ पर टिकाकर उसे पकड़े हुए था।

राजा ने भूगर्भ में उतर कर मोतियों के ढेर देखे। इसके बाद राजा ऊपर आया और मंत्री को आदेश दिया कि वह भी

एक बार देख आवे। मंत्री ने भूगर्भ से लौटकर बैरागी से क्षमा माँगी।

राजा ने पूछा–"यह सब क्या है?"

बैरागी ने यों उत्तर दिया–"मैं सदानंद नामक एक व्यापारी हूँ। व्यापार करते मैंने इस टापू के रहस्य को जान लिया है। इस टापू के चारों ओर चट्टानें हैं। पर समुद्र में जब ज्वार आता है तब ये चट्टानें डूबी रहती हैं। भाटे आने पर चट्टानें प्रकट हो जाती हैं। उन चट्टानों पर असंख्य मोतियों की सीपियाँ हैं। बक मोतियों की सीपियों के मांस के वास्ते उन्हें उठा लाकर टापू पर आ उतरते हैं। उन सीपियों में अपार मोती होते हैं। उन मोतियों को इकट्ठा करने के प्रयत्न करने के पहले ही मेरी पत्नी और बच्चों का देहाँत हो गया। जीवन से मैं विरक्त होकर बैरागी बन बैठा। मगर मोतियों का विचार मेरे दिल से मिट नहीं गया। उस विचार के समाप्त होने पर ही मुझे पूर्ण रूप से वैराग्य प्राप्त होगा। इसीलिए मैंने आपकी सहायता की याचना की। आपने जो धन दिया, उसे लगा लगा कर मैंने एक भूगर्भ गृह बनवाया। इस में मैंने राख छिडकवा दी। इस राख में मोतियों की जो सीपियाँ दबी रहेंगी, उन्हें बक देख नहीं पायेंगे। फिर जाकर वे मोतियों की सीपियाँ लायेंगे। इस तरह जो सीपियाँ जमा हुईं, उनमें से मैंने मोती निकलवाये। इसके लिए नाव और मजदूरों का मैंने प्रबंध किया। वे सारे मोती भूगर्भ गृह में जमा किये। मैंने इसलिए यह बात आप से गुप्त रखी कि जब तक मैं प्रत्यक्ष दिखा न दूँगा, तब तक आप यक़ीन न करेंगे। मैंने जो संकल्प किया, वह कार्य पूरा हो गया है। आज से आप ही लोग मोतियों का संग्रह कर सकते हैं। अब मेरे मन में जीवन के प्रति कोई मोह व ममता नहीं हैं। मैं अब निश्चिंत तपस्या कर सकता हूँ। आप और आपकी प्रजा प्रसन्न रहें!" यों बताकर बैरागी अपने रास्ते चला गया।

अन्न का चोर

एक गांव में एक धनी था। वह दाता के रूप में बहुत ही मशहूर हो गया था। एक बार उसके घर में बड़ी दावत हुई। अनेक ब्राह्मणों ने रसोई बनाने में हाथ बँटाया। गाँव के सभी वर्णों के लोगों ने भर पेट भोजन किया।

भोजन के समाप्त होने पर एक रसोइया जो ब्राह्मण था, एक थाल में पक्वान्न रखकर बिना किसी से कहे व मांगे पिछवाड़े की ओर से जाने लगा, तब उसे एक पहरेदार ने रंगे हाथ पकड़ लिया। पहरेदार ने उस ब्राह्मण को अपने मालिक के सामने ला खड़ा कर रखा।

धनी ने उससे पूछा–"महाशय, चोरी से ये पक्वान्न क्यों ले जा रहे हो? क्या तुम मुझसे मांग लेते तो मैं न देता?"

ब्राह्मण ने भय और अपमान के साथ कांपते हुए कहा–"आप मुझे क्षमा कीजिएगा; मैंने भर पेट जरूर भोजन किया है, पर मेरे घर में कई बच्चे हैं। वे ये मिस्टान्न खा नहीं पाये। इस विचार से मैंने यह गलत काम किया है।"

"यह तो गलत है न? ये मिस्टान्न खाकर तुम्हारे बच्चे पेट-दर्द से क्या परेशान नहीं होंगे? घर के भीतर जाकर लोटे भर घी भी लेते जाओ।" धनी ने कहा।

ब्राह्मण ये शब्द सुनकर कृतज्ञता के मारे विस्मय में आ गया।
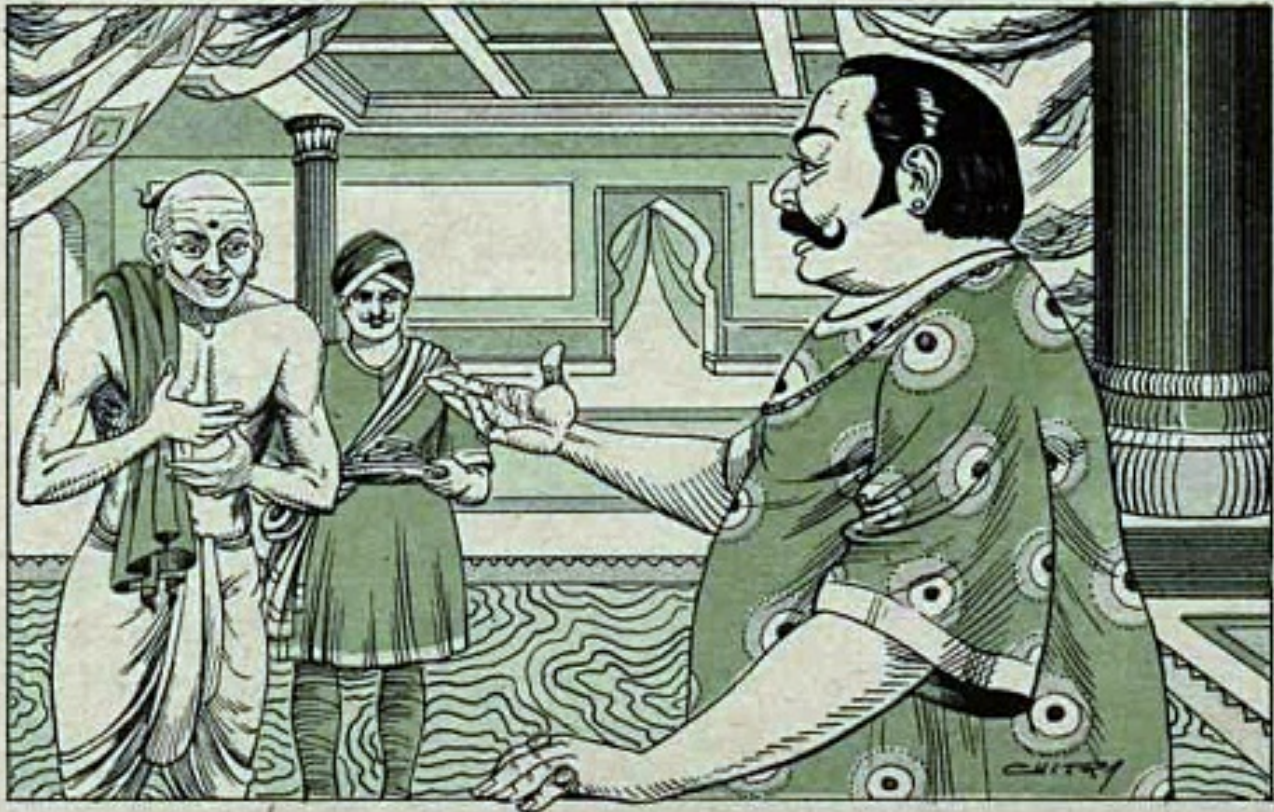
बदला

एक गाँव में माधव नामक एक युवक था। आलू उसे बहुत पसंद था। मगर किसी कारण से कई दिन तक उस गाँव में आलू बेचने कोई न आया। माधव ने कई दिनों तक आलू का इंतज़ार किया, आखिर निराश हो बस्ती में जाकर आलू खाने का निश्चय किया। एक दिन सवेरे घर में कहे बिना ही बस्ती की ओर चल पड़ा।

माधव जब बस्ती में पहुँचा, तब एक लारी से आलू उतारे जा रहे थे। अन्य मजदूरों के साथ माधव ने भी आलू के बोरे उतारने में हाथ बंटाया। उसकी मजूरी जब दी जाने लगी, तब उसने पैसे लेने से इनकार किया और मजदूरी के बदले में थोड़े से आलू माँगकर ले लिए। आलू एक तौलिये में बाँध बाजार में चलने लगा।

एक घर के सामने एक औरत खड़ी थी। उसने माधव से पूछा–"भाई, यह गठरी कैसी?"

माधव उस औरत के निकट पहुँचा और बोला–"माई, मैं पड़ोसी गाँव का निवासी हूँ। दो दिन से मैंने कुछ खाया-पिया नहीं। आलू थोड़ा पकाकर दो। तुम्हारा पुत्र होगा।"

माधव के जैसे उस औरत को भी आलू ज्यादा पसंद थे। वह भी आलू के वास्ते इधर कई दिनों से तरस रही थी। क्योंकि हाल ही में उसका पति बीमारी से चंगा हो चुका था। डाक्टर ने बताया था कि आलू की गंध लगे तो उसके पति की बीमारी और बढ़ जाएगी। इसलिए उनके घर में आलू पकाया नहीं जा सकता था। आज माधव ने उसे एक अच्छा मौक़ा दिया, क्योंकि उसका पति भी घर में न

सरोजा भनोत

था, पड़ोसी गाँव में गया था। वह रात को ही घर लौटने वाला था। इस वजह से उस औरत ने माधव के लिए आलू पकाकर देने को मान लिया।

माधव ने गठरी खोलकर सारे आलू उस औरत के हाथ सौंपे, दुपहर तक लौट आने की बात बताकर वह बस्ती में चला गया। लेकिन उसके लौटने के पहले ही औरत ने आलू पकाया और जल्दी-जल्दी सारे आलू खा डाले।

दुपहर को माधव लौट आया। उसने सोचा कि वह गृहिणी आलू के साथ थोड़े चावल भी परोसेगी। उसकी आशा के अनुरूप उस गृहिणी ने थाली भर चावल और दाल परोसकर माधव के आगे रख दिया। गृहिणी भीतर चली गयी। माधव ने सोचा कि वह आलू लाने गयी है, इसलिए बाद को परोसेगी। यह सोचकर उसने चावल, दाल खा लिया।

गृहिणी ने दुबारा आकर चावल परोसा, मट्ठा परोसते बोली–"बेटा, तुम दो दिन से भूखे हो। कोई जल्दी नहीं, आराम से पेट भर खा लो।"

माधव ने निराश भरे स्वर में पूछा–"माई, आलू कहाँ?"

"बेटा, मैं बताना भूल गयी। तुम्हारे आलू चूल्हे पर रखकर दूसरे कामों में लग गयी। इस बीच आलू ज्यादा पक गये और दाल बन गये। मैं क्या करूँ? बुरा मत मानो।"

"अच्छी बात है, जाने दो माई, तुमने भर पेट खाना खिलाया। कमबख्त आलू! आज नहीं तो कल खाऊँगा। लेकिन सुनो माईजी! दो दिन से मैंने नहाया-धोया नहीं, ठण्डे पानी से नहाने की आदत नहीं है। हंडी दोगी तो तुम्हारे घर के सामने ही पानी गरम करके नहा लूँगा।" माधव ने कहा।

गृहिणी ने आलू खा लिये थे, बदले में वह यह थोड़ी-सी मदद करना चाहती थी। इसलिए घर के भीतर जाकर हंडी ले आयी और माधव के हाथ देकर भीतर चली गयी।

गृहिणी के भीतर जाते ही माधव नल के पास पहुँचा। वहाँ पर पानी के वास्ते क़तार में रखे मिट्टी का एक बर्तन निकाला, उसकी जगह हंडी रख दी। मिट्टी के बर्तन में पानी भरकर गरम करने लगा।

थोड़ी देर बाद वह गृहिणी बाहर आयी। चूल्हे पर मिट्टी के बर्तन को देख आश्चर्य में आ गयी और माधव से पूछा—"अरे भाई, तुमने चूल्हे पर बर्तन रख दिया है। हंडी कहाँ?"

"अरे रे! शायद आग ज़्यादा हो गयी है जिससे हंडी मिट्टी के बर्तन के रूप में बदल गयी।" माधव ने जवाब दिया।

"मुझे धोखा देना चाहते हो? बताओ, मेरी हंडी कहाँ पर छिपा रखे हो?" गृहिणी ने क्रोध में आकर पूछा।

माधव ने भी उच्च स्वर में जवाब दिया—"धोखा कौन दे रहा है? जब आलू दाल बन सकते हैं तो क्या हंडी बर्तन नहीं बन सकती?"

हो-हल्ला मचने पर उसी का अपमान होगा, यह सोचकर वह गृहिणी घर के भीतर चली गयी और उसने किवाड़ बंद कर लिये।

तब माधव ने मिट्टी के बर्तन को यथा स्थान रख दिया। हंडी ले जाकर बाजार में बेच दी। दस सेर आलू खरीदकर अपने गाँव गया। कई दिन अपनी माँ के हाथों से आलू पकाकर खूब खाया।

रूपमति का विवाह

सातगढ़ का राजा शुभदेव था। उसकी इकलौती पुत्री रूपमती जब विवाह के योग्य हो गयी, तब योग्य वर के साथ उसका विवाह करने का राजा शुभदेव ने निश्चय कर लिया। राजकुमारी रूपमती अनेक कलाओं में प्रवीण थी। वह एक विदुषी भी थी। इसलिए राजा ने स्वयंवर की घोषणा की और दूतों के द्वारा अनेक राज्यों में यह समाचार भेजा। स्वयंवर के समय होनेवाली प्रतियोगिताओं में भाग लेकर रूपमती के साथ विवाह करने के विचार से कई राजकुमार सातगढ़ की राजधानी में आ पहुँचे।

धनुर्विद्या, घुडसवारी, खड्गयुद्ध, मल्ल-युद्ध इत्यादि विद्याओं की प्रतियोगिताएँ चलीं, इन प्रतियोगिताओं में दो सौ राजकुमारों ने भाग लिया, पर तीन राजकुमार सभी विद्याओं में सफल निकले। अब सवाल यह उठा कि राजकुमारी एक है और तीन राजकुमार विजयी हुए। अब क्या किया जाय?

"तुम तीनों में से एक ही को चुने जाने के लिए हम एक और प्रतियोगिता चलायेंगे। तुम लोग तैयार हो जाओ।" प्रधान मंत्री ने कहा। इस पर तीनों राजकुमारों ने स्वीकृति दी।

"तुम तीनों अपनी अपनी सहनशक्ति का अलग-अललग परिचय दोगे।" प्रधान मंत्री ने कहा।

सभी प्रतियोगिताओं में विजयी हुए असीताभ, रुद्रराज, तथा बेनुदेव ने अन्य प्रत्यर्थियों से छिपा कर अपनी सहनशक्ति का परिचय देने को मान लिया।

असीताभ ने अन्न जल त्याग कर सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक धूप में खड़े रहकर अपनी सहनशक्ति का परिचय दिया।

रुद्रराज भी रेतीले प्रदेश में कड़ी दुपहरी में बिना जूतों के बीस मील दौड़ा।

अब बेनुदेव को अपनी सहनशक्ति का परिचय देना था। वह जादू की विद्याएँ जानता था। उसका सेवक भी इन विद्याओं की जानकारी रखता था। इसलिए बेनुदेव अपने सेवक की मदद से अपनी सहनशक्ति का परिचय देने को तैयार हो गया।

बेनुदेव ने बीस पैनी सुइयाँ मंगवा लीं। इसके बाद उसने अपने बायें हाथ की मुठ्ठी प्रदर्शित की, अपने अंगूठे को ऊपर उठाया और उस पर रेशमी रूमाल ढक दिया। तब रूमाल के नीचे स्थित अपने अंगूठे में सुइयाँ चुभोने को राजा से कहा। इस पर बीस सुइयों को अंगूठे में चुभोया गया; पर बेनुदेव के चेहरे पर किसी प्रकार की शिकन या पीड़ा प्रकट न हुई। उल्टे वह हंसता ही रह गया।

इसे देख प्रेक्षकों ने हर्षनाद किये और बताया कि ऐसी सहनशक्ति का किसीने प्रदर्शन नहीं किया है। सुइयों को निकालने बाद बेनुदेव ने अपने रूमाल को जेब में रख लिया।

बेनुदेव को ही रूपमती के योग्य पति घोषित किया गया, तब सब के सामने उन दोनों का विवाह वैभव के साथ संपन्न हुआ।

दिन, महीने और साल बीतते गये। राजा शुभदेव का देहांत भी हो गया। तब

बेनुदेव गद्दी का वारिस बना। शुभदेव ने ही अपने जीवनकाल में निर्णय किया था कि उसकी मृत्यु के बाद उसका दामाद राजा बनेगा।

एक दिन बेनुदेव रूपमती तथा अपने दो बच्चों को साथ ले जंगल में शिकार खेलने गया। एक जगह उन लोगों ने जंगली गुलाबों की एक झाड़ी देखी। उसमें रंग-बिरंगी गुलाब खिले हुए थे। बेनुदेव की पुत्री लाजमती गुलाब बहुत चाहती थी। उसने एक गुलाब को दिखाकर कहा कि वह फूल उसे चाहिए।

उस फूल को तोड़ लाने के लिए बेनुदेव ने एक नौकर को आदेश दिया। मगर लाजमती ने नहीं माना। उसने हठ किया कि बेनुदेव ही उसे तोड़कर उसे ला दे।

"बच्ची जब माँग करती है तो आप ही तोड़कर उसे क्यों नहीं देते?" रूपमती ने बेनुदेव से कहा।

बेनुदेव फूल तोड़ने गया। झाड़ी में से गुलाब तोड़ते चिल्ला उठा–"ओह, मैं मर गया। गुलाब के कांटें मेरी उंगलियों में गड़ गये।"

"गुलाब के काँटों के चुभने से आप परेशान क्यों होते हैं? बच्चे भी हंसते हुए उस पीड़ा को सहन करते हैं। जरा देखने भी दो कि कहीं खून तो नहीं बह रहा है न?" रूपमती ने कहा।

बेनुदेव ने अपने बायें हाथ का अंगूठा दिखाया।

"आश्चर्य की बात है। आपने अपनी सहनशक्ति का परिचय देने के लिए इसी अंगूठे में तो एक साथ बीस सुइयाँ चुभो ली थीं! उस वक़्त आप ज़रा भी परेशान नहीं हुए! आज इस छोटे से काँटे के चुभने से आप बहुत ही परेशान हो रहे हैं, यह आश्चर्य की बात नहीं है?" रूपमती ने पूछा।

"तुम अन्यथा न समझो! मुझ में ऐसी सहनशक्ति नहीं है। उस वक़्त मैंने एक छोटा-सा जादू किया था। मैं तुम्हारे सौंदर्य को देख तुम पर मोहित हो गया था। इसलिए तुम को अपनी पत्नी बनाने के लिए मुझे राजा को धोखा देना पड़ा!" बेनुदेव ने कहा।

रूपमती ने कुतूहल के साथ पूछा—"कैसे धोखा दिया?"

"वह बड़ा ही आसन था। मेरे बायें हाथ की मुट्ठी में अंगूठे के आकार में तैयार किया गया गाजर था। अपने बायें हाथ पर रूमाल ढकने के बाद मैंने गाजर को सावधानी से ऊपर उठाकर अंगूठे के स्थान पर रखा। सभी सुइयाँ उसी गाजर में चुभोयी गयीं। इसलिए मुझे कोई पीड़ा न हुई। इसके बाद मैंने रूमाल के साथ गाजर को भी अपनी जेब में रख लिया। पर सच्ची बात को किसी ने नहीं पहचाना!" बेनुदेव ने समझाया।

"वाह, कैसा अन्याय है! मेरे पिताजी, तथा उनके परिवार को इस तरह धोखा दिया? मैं इसे सहन नहीं कर सकती। इसका दण्ड आपको मिलना ही चाहिए।" रूपमती ने क्रोध का अभिनय करते कहा।

"मैं हाथ जोड़कर खड़ा हुआ हूँ। महारानी जो भी दण्ड दे, भोगने को तैयार हूँ।" बेनुदेव ने कहा।

"अंतःपुर में आजीवन रहने का दण्ड देती हूँ।" रूपमती ने कहा।

"जो आज्ञा, महारानी जी!" बेनुदेव ने उत्तर दिया।

जैसे को तैसा

एक शहर में कमला नामक एक विधवा भठियारिन थी। पर उसकी सौतेली लड़की विमला उसके साथ ही रहा करती थी। पति के मरने के बाद कमला ने पेट भरने के वास्ते होटल चलाया। वह शहर व्यापार के लिए बहुत ही मशहूर था। इसलिए लोगों का आना-जाना अधिक होता था। मगर ग्राहकों के लिए खाना बनाने, परोसने वगैरह का पूरा काम विमला को करना पड़ता था। कमला उसे सब तरह से तंग किया करती थी।

विमला सुंदर कन्या थी। वह विवाह के योग्य भी हो चुकी थी, लेकिन कमला विमला की शादी का नाम तक न लेती थी। विमला शादी करके ससुराल चली जाती तो कमला की बेगारी कौन करता?

अड़ोस-पड़ोस वाले अगर विमला की शादी की चर्चा करते तो कमला कहती— "विमला को छोड़ मेरे लिए है ही कौन? इसको छोड़कर में पल भर भी नहीं रह सकती। में दहेज़ नहीं दे सकती, इसलिए विमला के साथ शादी करने वाले को चाहिए कि वह मुझे ही दहेज़ के रूप में मानकर अपने साथ ले जावे।"

कमला का यह रवैया देख विमला के साथ शादी करने को कोई आगे नहीं आया। बिना दहेज़ के विमला के साथ शादी करनेवालों की कमी नहीं है, पर कमला का बोझा उठाने को कोई तैयार न था। विमला ने सोचा कि इस ज़िंदगी में अब उसकी शादी न होगी।

दिन गुजरते गये। एक दिन दुपहर के समय रामदास नामक एक युवक कमला के घर आया। भोजन करके उसका मूल्य चुकाते हुए रामदास ने कहा—"मैं योग्य कन्या के साथ विवाह करना चाहता

विनोद शंकर शर्मा

हूं। तुम्हारी नजर में कोई कन्या है क्या?"

"मैं घर से बाहर नहीं जाती, मैं क्या जानूँ, बेटा!" कमला ने जवाब दिया।

"कमला से बात करने वाली औरतों ने ठोक दिया–"रत्न जैसी कन्या घर में है, फिर झूठ क्यों बोलती हो कि मैं कुछ नहीं जानती।"

"उसके साथ शादी करना आसान बात थोड़े ही है?" कमला ने कहा।

"क्या ऐसी मुसीबत है?" रामदास ने आश्चर्य प्रकट किया।

कमला रामदास की ओर तीखी नजर दौड़ाने बोली–"उसके साथ शादी करने वाले को दहेज़ के रूप में मेरी जिम्मेदारी भी उठानी होगी।"

"यह कोई मुसीबत है? तुम जैसे अनुभव रखनेवाली यदि साथ रही तो बड़ा उपकार होगा! अब देरी ही क्यों? मेरे साथ शादी करो।" रामदास ने ने कहा।

कमला ने सोचा था कि उसकी शर्त को सुन रामदास कमला के साथ शादी करने से इनकार कर बैठेगा! उसने यह नहीं सोचा था कि वह इतनी आसानी से मान लेगा। तब कमला ने रामदास को निराश करने के ख्याल से पूछा–"तुम अपने वंश-वृक्ष का तो परिचय दो।"

"ओह, वह तो बहुत बड़ा है। मैं अपने मुंह से उसका वर्णन क्यों करूँ? कल तुम्हीं खुद देखोगी!" रामदास ने समझाया।

कमला की समझ में न आया कि इस रिश्ते को तोड़ने का उपाय क्या है! अड़ोस-पड़ोस की महिलाओं ने कमला पर ज़ोर डाला कि वह इस रिश्ते को मान जाय! कमला ने लाचार होकर रामदास के साथ विमला का विवाह किया।

शादी के बाद दूसरे दिन ही रामदास ने अपनी पत्नी को घर ले जाने की बात कही। कमला ने अपने सारे गहने पहन लिये। रुपये-पैसे ले लिये। घर पर ताला लगा कर नये दंपति के साथ चल पड़ी।

रामदास ने कहा कि उसका गाँव बहुत ही निकट है। यों कहते उसने कमला को शाम तक पैदल चलने को विवश किया।

कमला थक गयी और खीझकर बोली– "तुम्हारा गाँव और कितनी दूर है? कहीं जंगल में तो नहीं है?"

"बस, और थोड़ी दूर! हम नजदीक़ आ गये हैं!" रामदास ने जवाब दिया।

संध्या तक वे लोग एक जंगल में पहुँच गये। तब रामदास ने घनी झाड़ियों के बीच के एक विशाल बरगद को दिखाते हुए कहा–"यही हमारा निवास है।" उस बरगद पर एक मचान था और उस वृक्ष के तने में एक बड़ा खोखला था।

रामदास ने फिर उस वृक्ष को दिखाते हुए कमला से कहा–"यही हमारा वंश-वृक्ष है। हमारे दादा-परदादा यहीं पर पैदा हुए और यहीं बड़े हुए।"

"अरे दुष्ट! तुमने मुझे कैसे दगा दिया? तुमने अपना वंश-वृक्ष बहुत बड़ा बताया तो मैंने सोचा कि तुम एक बड़े परिवार के आदमी हो! तुमने मेरा घर डुबो दिया।" कमला ने अपना आक्रोश प्रकट किया, तब वह रोने भी लगी, मगर विमला मौन रह गयी।

घना अंधेरा फैलता जा रहा था। जंगली जानवरों की चिल्लाहटें सुनायी दे रही थीं। कमला ने सोचा कि आज की

रात सकुशल बीत जाय तो कल की बात देखी जा सकती है। यह सोचकर रामदास से बोली–"देखो, आज की रात में किसी खूँख्वार जानवर के मुँह में न पड़ूँ? मुझे इस मचान पर चढ़ा दो।"

"तुम्हारे विशाल काय शरीर को मचान पर चढ़ाना मेरे लिए मुमकिन नहीं है। अगर चढ़वा भी दूँ तो, मचान के साथ हमारा वंश-वृक्ष टूट जायगा। रात को किसी भालू के आने के पहले ही तुम उस खोखले में घुसकर सो जाओ।" रामदास ने कमला से कहा।

कमला अपनी जान हथेली में ले डरते-घबराते खोखले में घुसकर बैठ गयी।

उसने अपने मन में निश्चय कर लिया कि आज रात वह अपने प्राणों की रक्षा कर सके तो सवेरा होते ही अपने घर लौट जाएगी, चाहे विमला का कुछ भी हो।

बड़ी देर तक वह जागती रही, सवेरा होते-होते उसकी आँख लग गयी। इतने में कमला को लगा कि उसे कोई खींच रहा है, तब वह झट जाग गयी। कोई लंबा भालू कमला को खोखले से बाहर खींच रहा है। इस पर वह घबरा कर चिल्ला उठी। उस चिल्लाहट को सुनकर भालू कमला को छोड़ भाग गयी। इसके बाद थोड़ी देर तक कमला अचेत पड़ी रही।

रामदास ने निकट आकर डाँटा–"सवेरा होने के पहले ही चिल्लाते क्यों हो? क्या हुआ है?"

कमला ने धीरज धरकर कहा–"न चिल्लाऊँ तो करूँ ही क्या? तेरा कोई घर भी तो हो! मुझे कमबख्त भालू ने पकड़ लिया था। अब मैं एक क्षण यहाँ नहीं रह सकती! जान बची तो लाखों पाये! चाहे विमला पर कुछ भी बीते, मुझे कोई चिंता नहीं है।" यों कहते कमला खोखले से बाहर आयी।

विमला बाहर खड़ी थी, पर वह मौन रह गयी।

रामदास ने हँसकर कहा–"तुम मुझे दहेज़ में मिली हो! तुम्हें कैसे जाने दूँगा?"

ये बातें सुनकर कमला का चेहरा पीला पड़ गया। उसने अपने सारे गहने उतारकर विमला को पहनाये, अपना सारा धन रामदास के मुँह पर दे मारा और वह अपने घर की ओर चल पड़ी।

इसके बाद रामदास विमला को पहाड़ पर स्थित अपने घर ले गया। घर की दीवारों पर लटकनेवाले जानवरों के चमड़ों को देख विमला ने सोचा कि उसका पति एक शिकारी है। उनमें भालू की खाल को देखते ही कमला को डरानेवाले भालू का रहस्य भी विमला के सामने खुल गया।

कालिदास का गुरु

राजा भोज के दरबार में विष्णुनर्मा नामक एक पंडित था। वह कालिदास से मन ही मन जलता था। वह सदा कालिदास का अपमान करने का कोई उपाय ढूँढा करता था।

एक दिन विष्णुशर्मा के पास एक मूर्ख ब्राह्मण आया और बोला—"महाशय, मैं एक गरीब ब्राह्मण हूँ। पढ़ना-लिखना जानता नहीं हूँ। आप किसी न किसी प्रकार मुझे राजा के दर्शन कराकर मेरी दरिद्रता को दूर करें तो मैं जीवन भर आपके उपकार को नहीं भूलूंगा;"

विष्णुशर्मा ने सोचा कि इस ब्राह्मण को आधार बनाकर कालिदास का अपमान किया जा सकता है। इस विचार के आते ही उसने ब्राह्मण से कहा—"तुम पढ़े-लिखे नहीं हो, इसलिए राज दरबार की पंडित-सभा में तुम भाग नहीं ले सकते। तुम एक काम करो, सन्यासी का वेष धरकर चार-पांच शिष्यों को साथ ले जब मैं बुलाऊँ तब राज दरबार में आ जाओ। मैं तुम्हारे लिए शिष्यों का इंतजाम करूँगा। राजधानी में अगर कोई तुम से पूछे कि 'तुम कौन हो?' तुम यही उत्तर देना कि 'मैं कालिदास का गुरु हूँ।' तब राजा भोज तूम्हारी परीक्षा लिये बिना ही पुरस्कार देकर भेज देंगे।"

विष्णुशर्मा की बातों में आकर भोला ब्राह्मण सन्यासी का वेश धरकर चार शिष्यों को साथ ले राज पथ के एक चौराहे पर बैठ गया। रास्ते चलनेवाले अगर पूछते कि "ये कौन हैं?" उसके शिष्य उत्तर देते—"आप कालिदास के गुरु हैं।"

यह बात पल-भर में सारी राजधानी में फैल गयी। आखिर कालिदास के कानों में भी पड़ गयी। कालिदास ने भांप लिया

रजनी दत्त

कि यह सब विष्णुशर्मा की करतूत है। उसने मौक़े पर इसका जवाब देने का संकल्प किया। सन्यासी के बारे में राजा भोज ने भी सुना और कालिदास से पूछा–"महाकवि, हमारे सुनने में आया है कि आपके गुरु राजधानी में पधारे हैं। क्या आपने उनके दर्शन नहीं किये?"

"मैं उनके दर्शन करना चाहता हूँ!" यों राजा को जवाब देकर कालिदास उस दिन रात को नकली सन्यासी के पास गया और बोला–"हे ब्राह्मण! तुम अपने को कालिदास का गुरु बताते हुए कपट सन्यासी का वेष धरकर बैठे हो! इससे तुम्हारा क्या लाभ होगा?"

ब्राह्मण को जब यह मालूम हुआ कि उससे यह सवाल खुद कालिदास ही पूछ रहा है, वह डर गया, अपने हाथ जोड़कर बोला–"महाकवि, मुझे क्षमा करो। मैंने विष्णुशर्मा के पास जाकर थोड़ा धन दिलाने की प्रार्थना की। उन्होंने मुझे इस वेष में यहाँ पर बिठाया है।"

ब्राह्मण की दीनता पर कालिदास को दया आ गयी, उसने समझाया–"हे ब्राह्मण धन कमाने के अनेक मार्ग होते हैं, मैं उन्हें बुरा नहीं मानता। तुम जैसे गरीब ब्राह्मण अगर थोड़ा धन पा लेता है तो मुझे प्रसन्नता ही होगी। लेकिन राजा को यह बात मालूम हो गयी कि तुम कालिदास के गुरु हो! वे ज़रूर तुमको दरबार में बुला भेजेंगे। अगर वे तुमसे बिना कुछ पूछे धन देकर भेज दे तो कोई कठिनाई नहीं है। ऐसा न होकर वे तुमसे कुछ पूछेंगे, तो मेरी तरफ़ इशारा करो। मैं कोई न कोई जवाब देकर राजा को प्रसन्न करने का प्रयत्न करूँगा।"

कालिवास की कल्पना के अनुसार दूसरे दिन राजा भोज ने पालकी भेजकर कालिदास के गुरु को सादर दरबार में बुला भेजा। चार शिष्यों को साथ ले वह ब्राह्मण ठाठ से दरबार में आया। राजा

भोज ने ब्राह्मण का स्वागत किया और उचित आसन पर बिठाया ।

इसके बाद राजा भोज ने कालिदास की ओर मुड़कर कहा–"मैं आपके गुरु से एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ ।"

"महाराज, आप अवश्य पूछिये! वे सभी विषयों में निष्णात हैं।" कालिदास ने उत्तर दिया ।

इस पर राजा भोज ने ब्राह्मण की ओर मुखातिब हो विनय पूर्वक पूछा–"महानुभाव! मैं जो प्रश्न पूछने जा रहा हूँ, वह आपकी दृष्टि में यदि सरल प्रश्न हो तो आप मुझे क्षमा करें। लंका के अधिपति दशकंठ का नाम रावण भी है। इसके अनेक कारण बताये जाते हैं। आप कृपया रावण शब्द की व्युत्पति बताइये।"

दरबारी लोग वह सोचकर शांत रह गये, न मालूम कालिदास के गुरु क्या बतानेवाले हैं! ब्राह्मण की समझ में न आया कि क्या जवाब दे। थोड़ी देर तक मौन रहकर बोला–"ओह, वह राभण?"

यह शब्द सुनकर सभी दरबारी विस्मय में आ गये! राजा भोज ने भी आश्चर्य में आकर पूछा–"महा पंडित, सब लोग रावण कहते हैं, लेकिन वह राभण कैसे होगा?"

तब उस ब्राह्मण ने साहस बटोर कर कालिदास की ओर संकेत करते हुए कहा–"मेरा शिष्य इसका जवाब देगा!"

राजा भोज ने कालिदास से पूछा। कालिदास ने यों जवाब दिया :

"भकार; कुंभकर्णे च,
भकारश्च बिभीषणे;
तयो र्ज्येष्ठे, कुलश्रेष्ठे
भकारः किम न विद्यते?"

[कुंभकर्ण के नाम में भकार है, विभीषण के नाम में भी भकार है। इन दोनों से बड़े और कुल श्रेष्ठ रावण के नाम में भकार क्यों न हो?]

यह जवाब सुनकर राजा भोज प्रसन्न हुआ। उस मूर्ख ब्राह्मण को सादर एक लाख रुपये देकर विदा किया। इस प्रकार विष्णुशर्मा का भी अपमान हुआ।
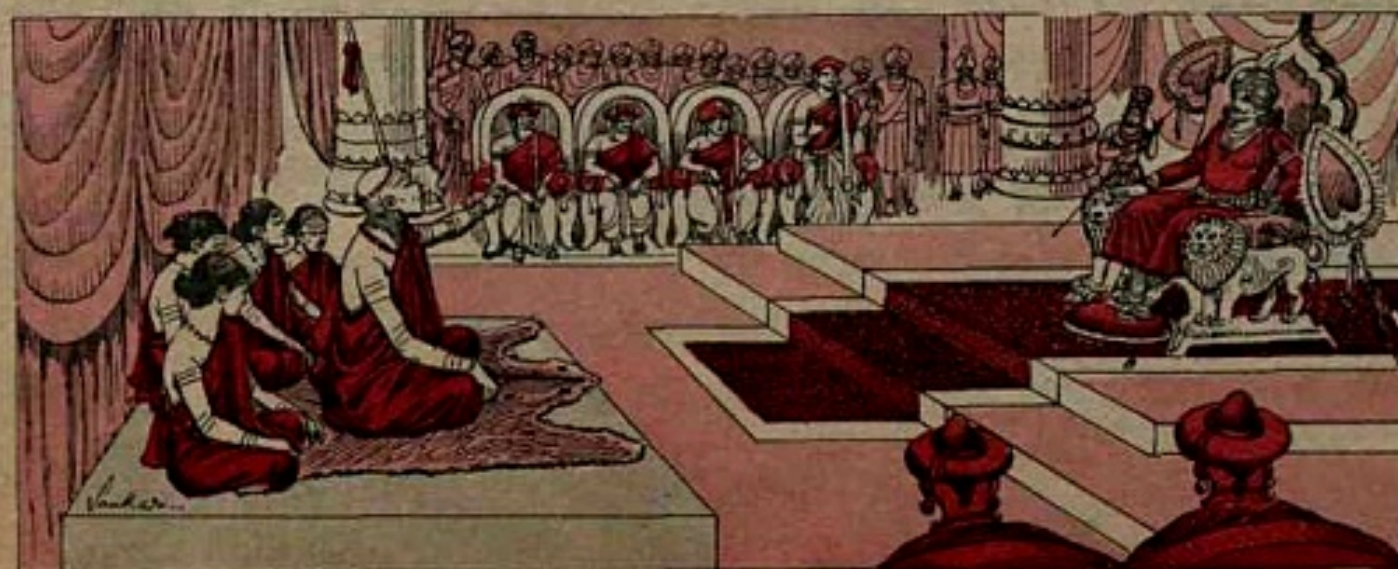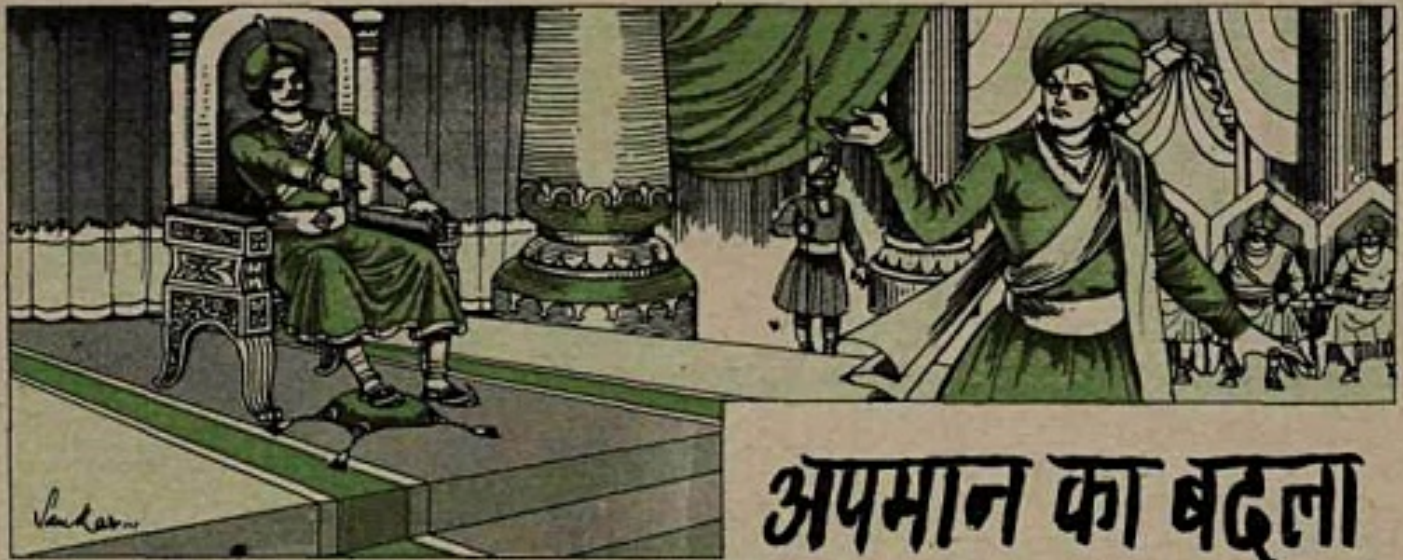
अपमान का बदला

मारवाड़ राज्य की राजधानी मंडू नगरी थी। जयदेव उसका राजा था। एक दिन जयदेव का दरबार लगा हुआ था, तब एक चारण ने आकर राजा की प्रशंसा में आशु रूप में अनेक लंबी कविताएँ सुनायीं।

साधारणतया चारण और भाट आकर राजाओं की प्रशंसा करते हैं तो उन चारणों का सत्कार करना दरबारों की परिपाटी है। लेकिन जयदेव अपने स्वभाव से ही कवि और चारणों से चिढ़ता था। उसने चारण को पुरस्कार नहीं दिया, बल्कि भरी सभा में बुरी तरह से उसका अपमान करके भेज दिया।

चारण मन ही मन राजा जयदेव की निंदा करते सीधे हाड़वंशी राजाओं की राजधानी बुयोडा नगर में पहुँचा। उसे मालूम हुआ कि उस नगर का राजा आल्हा शिकार खेलने गया हुआ है। वह क़िले के द्वार पर राजा की प्रतीक्षा में बैठा रहा।

थोड़ी देर बाद राजा सपरिवार शिकार से लौट आया। वह क़िले में प्रवेश कर ही रहा था तभी चारण उसके निकट जाकर बोला—"राजमार्तण्ड! राजाधिराज! जयीभव! दिग्विजयी भव!" यों चारण ने उच्चस्वर में आशीर्वाद दिया।

राजा ने प्रसन्न होकर चारण से पूछा—"माँगो, क्या चाहते हो?" राजा ने सोचा कि चारण धन, सोना, या एकाध गाँव माँग बैठेगा। मगर चारण ने निवेदन किया—"प्रभु, आप अपनी पगड़ी मुझे प्रदान कीजिए।"

"यह तुम क्या माँगते हो? मेरी पगड़ी तुमको क्या ख़ाना देगी या कपड़ा? ज़मीन या जायदाद माँग लो, पगले, यह कपड़ा

पूर्णा अग्रवाल

क्यों माँगते हो?" राजा ने आश्चर्य में आकर पूछा।

"महाराज! आपकी पगड़ी बाँधकर घूमने की इच्छा है। इससे सभी देशों में आपका का यश फैलेगा! आप सिर्फ़ मेरी इच्छा की पूर्ति कीजिएगा।" चारण ने उत्तर दिया।

राजा वचन का पक्का था। उसने तुरंत अपनी पगड़ी उतारकर चारण के हाथ दे दी। वह पगड़ी धारण कर चारण महाराजा की भाँति ठाठ से वहाँ से चला गया। उसके इस प्रकार जाते लोगों ने सोचा कि वह कोई पागल है और वे सब हंस पड़े।

कुछ दिन बीत गये। चारण और उसकी पगड़ी को सब लोग भूल गये। एक दिन चारण राजा आल्हा के दरबार में आया, और कुचली गयी हुई पगड़ी को राजा के सम्मुख रखकर वह फूट-फूटकर रोने लगा।

"चारण, रोते क्यों हो?" राजा ने व्यग्रता पूर्वक चारण से पूछा।

"महाराज, आप से क्या निवेदन करूँ? मेरे कारण आप का बड़ा ही अपमान हो गया है?" चारण ने चिंतापूर्ण स्वर में उत्तर दिया।

"क्या हुआ है? जल्दी बताओ?" राजा पूछा।

"मैं आपकी पगड़ी पहनकर अनेक देशों में गया। कई राजाओं के दर्शन करके कविता सुनायी। उन राजाओं को प्रणाम

करते समय अपने दायें हाथ से पगड़ी निकालकर उनके सामने झुककर बायें हाथ से सलाम करता था। जब वे पूछते कि क्यों ऐसा करते हो? तब मैं यही जवाब देता था–"यह महाराजा आल्हा की पगड़ी है। यह दूसरों के सामने झुककर प्रणाम नहीं करती।"

यह बात सुनकर राजा और राज दरबारी बहुत प्रसन्न हुए और चारण की प्रशंसा की।

चारण ने फिर यों कहा–"लेकिन महाराज अंत तक मैं आपकी प्रतिष्ठा की रक्षा नहीं कर सका। मारवाड के राजा जयदेव के दरबार में आप की पगड़ी का घोर अपमान हो गया है। मैंने अपने रिवाज़ के अनुसार उन्हें प्रणाम किया, मेरे इस व्यवहार के बारे में अन्य राजाओं के जैसे उन्होंने भी सवाल किये। मैंने जैसे और राजाओं को उत्तर दिया, वही उत्तर उन्हें भी दिया। लेकिन उन्होंने और राजाओं की भाँति आपकी प्रतिष्ठा को स्वीकार नहीं किया, बल्कि सिंहासन से उठकर आये, मेरे हाथ में स्थित पगड़ी को लात मारा और मुझे पिटवाकर भेज दिया।"

ये बातें सुन राजा और राजदरबारी क्रोध में आ गये। सभी दरबारी एक साथ चिल्ला उठे–"यह हमारा घोर अपमान है! उस घमण्डी जयदेव को उचित सबक़ सिखाना चाहिए।"

एक वृद्ध मंत्री ने समझाया–"कपड़े के एक चिथड़े को लेकर पराये राजा के साथ दुश्मनी क्यों मोल ले?" पर उनकी बातों पर किसी ने ध्यान नहीं दिया।

आल्हा ने अपने नेतृत्व में सेना को ले जाकर मंडू को घेर लिया।

जयदेव और आल्हा के बीच भयंकर युद्ध हुआ। उस युद्ध में जयदेव की मृत्यु हो गयी। आल्हा ने मंडू राज्य पर अधिकार कर लिया।

तब जाकर चारण का क्रोध शांत हुआ।

इतिहासकार

महेन्द्रगिरि पर राजा पुरंदर शासन करता था। वह न केवल राजतंत्र में बड़ा निपुण था, बल्कि कलाकारों के प्रति भी आदर भाव रखता था और उनका सम्मान करता था। इसलिए वे मौक़ा मिलते ही विविध प्रकार की कलाओं के मर्मज्ञ विद्वानों का सत्कार किया करता था।

एक दिन राजा पुरंदर के दरबार में एक विदेशी आया। उसका नाम श्रीकंठ था। इतिहास लिखना उसका पेशा था। उसने प्रत्येक देश में एक वर्ष बिताकर वहाँ की भाषा सीखी और उस देश का इतिहास पूर्ण रूप से प्रस्तुत किया। इस तरह श्रीकंठ ने चौदह भाषाओं में पांडित्य प्राप्त किया, चौदह देशों का इतिहास लिखा, तब महेन्द्रगिरि में आया।

ऐसे विद्वान को अपने देश में आया देख राजा पुरंदर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने श्रीकंठ से कहा—"आप मेरे नगर में भी एक वर्ष तक रहकर हमारे देश का इतिहास लिखिए। आपके लिए आवश्यक सारी सुविधाओं का मैं प्रबंध करूँगा।"

"अच्छी बात है, महाराज! लेकिन मुझे आप अपने अंतरंग सखा बनाकर अपने ही साथ रहने दीजिए। इससे मेरा काम बड़ा सरल हो जाएगा।" श्रीकंठ ने जवाब दिया।

पुरंदर ने इस शर्त को स्वीकार कर लिया। श्रीकंठ आधिकारिक रूप से राजा के अंतरंग सखा का पद प्राप्त कर राजा के साथ टहलने, शिकार खेलने व युद्धों में भी जाया करता था। इस तरह राजा का शासन-विधान का सूक्ष्म रूप से परिशीलन किया, जब-तब नगर में घूमते सब तरह के लोगों के साथ चर्चा करते अपना समय बिताने लगा। नगर के सभी

इंद्रनाथ केनेडिया

लोगों को शीघ्र मालूम हो गया कि श्रीकंठ राजा का अंतरंग सखा है। इसलिए सब लोग उसके प्रति विशेष आदर दिखाने लगे। नगर के धनी और व्यापारी भी उसे निमंत्रण देकर दावत देते। उनका विचार था कि श्रीकंठ के द्वारा वे लोग लाभ उठा सकते हैं।

श्रीकंठ के महेन्द्रगिरि में आये एक वर्ष पूरा होने को था। महेन्द्रगिरि के इतिहास का लेखन भी समाप्त होने को था। एक दिन राजा ने उस अपूर्ण ग्रन्थ को मंगवा कर पढ़ा। उस में महेन्द्रगिरि के आचार-व्यवहार, जनता की भलाई के लिए राजा के द्वारा किये जानेवाले कार्य, राजा तथा दरबारियों के बीच का परस्पर विश्वास, एवं सहयोग इत्यादि बातें सुंदर ढंग से वर्णित हुई थीं।

लेकिन एक स्थान पर लिखा था–"इस नगर की जनता भोली है। राजा तो धर्मात्मा हैं। राज कर्मचारी राजा के प्रति अनुपम राजभक्ति रखते हैं। मगर इस नगर के व्यापारी और धनी अन्याय पूर्वक धनार्जन करके धोखे का जीवन बिता रहे हैं।"

राजा को ये अंतिम शब्द पसंद नहीं आये। उन्होंने श्रीकंठ को बुलाकर कहा–"महा पंडित, आपका ग्रन्थ अच्छा बन पड़ा है। इसमें त्रुटियाँ निकालने की जगह नहीं है। लेकिन मेरे नगर के व्यापारी तथा धनियों को स्वार्थी और
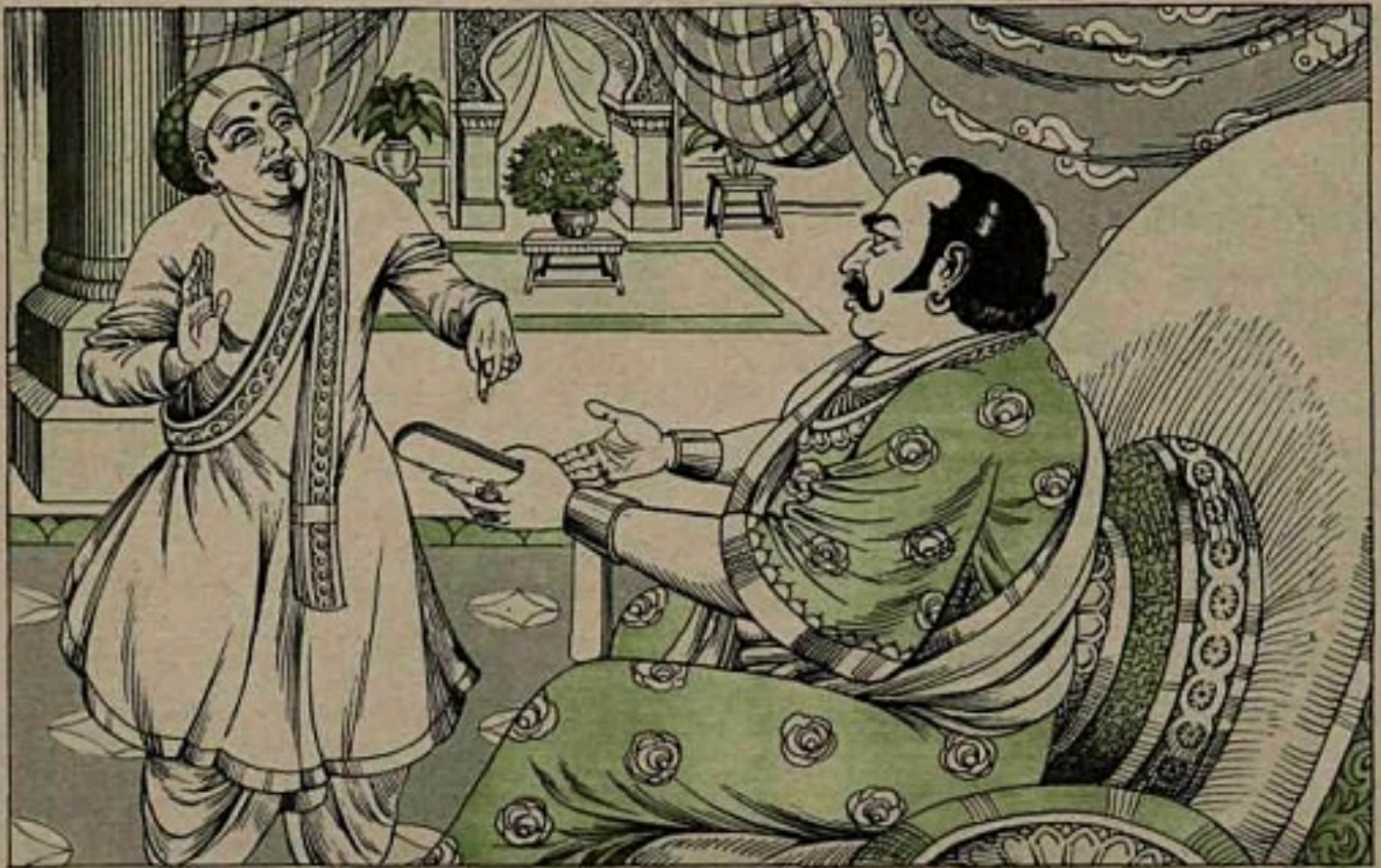
धोखेबाज चित्रित किया है। यह बिलकुल असत्य है।"

"मेरे लेखन में अगर कोई त्रुटियाँ हों तो क्षमा कीजिए। इस ग्रन्थ को पूरा करने के पहले मैं उन त्रुटियों को सुधार कर चला जाऊँगा।" श्रीकंठ ने कहा।

ये बातें सुन राजा बहुत प्रसन्न हुआ, दूसरे दिन श्रीक़ंठ नगर के बड़े धनी तथा व्यापारियों को देखने गया और कहा— "राजा चक्रवर्ती के पास भेंट भेजना चाहते हैं। इसलिए आपके पास जो उत्तम क़िस्म के हीरे हैं, उनकी सूची बनाकर दे दीजिए।" इसी प्रकार श्रीकंठ ने कुछ लोगों से सोना भी ले लिया। श्रीकंठ राजा के अंतरंग सखा थे, इसलिए सबने लाखों रुपयों की क़ीमती चीज़ों को बिना संकोच के दे दिया। श्रीकंठ ने वस्तुओं की जो सूची तैयार की, उस पर व्यापारियों के हस्तक्षार भी लिये।

दूसरे दिन सवेरे नगर में यह अफवाह फैल गयी कि पिछली रात को श्रीकंठ नगर से भाग गया है। इस पर वे सब राजा के पास आ पहुँचे जिन लोगों ने पिछले दिन श्रीकंठ के हाथ हीरे व सोना दिये थे, वे अपनी सूचियाँ ले जाकर राजा से बोले—"महाराज, हमारी रक्षा कीजिए। आपके अंतरंग सखा ने आपका नाम लेकर हम सबको लूट लिया है। आप तो धर्मात्मा हैं। हमें जो नुक़सान हुआ है, उसे भर दीजिए।"

राजा ने सोचा कि उन्होंने श्रीकंठ को यह आदेश नहीं दिया था कि धनी व व्यापारियों से हीरे व सोना वसूल करे, श्रीकंठ ही सबको लूटकर भाग गया होगा। यह सोचकर उन्होंने खजांची को बुला भेजा और आदेश दिया कि किस किस को कितना देना है, इसकी सूची बनावे।

खजांची ने सबकी सूचियाँ लेकर हिसाब किया तो कुल इतनी रक़म हुई जितनी खजाने में न थी। यह बात सुनकर राजा भी चिंता में डूब गया।

इतने में श्रीकंठ एक भारी थैली के साथ वहाँ आ पहुँचा और उसे राजा के सम्मुख रखकर एक सूची उनके हाथ में दे बोला–"महाराज, मैंने जिस जिस से जो चीजें ली हैं, उनकी सूचियाँ बनायी हैं। आप कृपया सूची के मुताबिक़ उनकी चीजें उन्हें वापस कर दीजिए।"

श्रीकंठ को देखते ही फरियादी सब घबरा गये। राजा के मुंह से बात निकलने के पहले ही वे राजा के चरणों पर गिरकर बोले–"महाराज, हमने आपको जो सूचियाँ दी हैं, वे सही न हों तो कृपया हमें क्षमा कर दीजिए। हमने जब सुना कि श्रीकंठ भाग गये हैं, तब लोभ में आकर हमने गलत सूचियाँ तैयार की हैं।"

राजा ने उनकी चीजें उन्हें लौटाने से साफ़ इनकार किया, उन्हें खाली हाथ वापस भेजा। श्रीकंठ के हाथ से थैली लेकर उसे खजांची के हाथ दे खजाने में जमा करने का आदेश दिया।

इसके बाद राजा ने श्रीकंठ से कहा–"महा पंडित, आपके ग्रन्थ में झूठी बातें नहीं हैं, इसे साबित करने के लिए आपको काफी श्रम उठाना पड़ा है।"

"बड़े लोगों के बारे में सच्ची बातें लिखने के लिए ऐसी मुसीबतें उठानी पड़ती हैं; महाराज, यह भी एक कला है।" श्रीकंठ ने उत्तर दिया।

इसके बाद श्रीकंठ राजा पुरंदर से पुरस्कार प्राप्तकर दूसरे देश में चला गया।

सबसे पहले भीम ने युद्ध शुरू किया। वह भयंकर रूप से सिंहनाद करके कौरवों की सेना पर टूट पड़ा। इस पर दुर्योधन, दुश्शासन, दुर्मुख, दुस्सह इत्यादि अनेक योद्धाओं ने भीम को घेर लिया। उन सब का सामना उप पांडव, अभिमन्यु, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न आदि ने किया। धीरे धीरे युद्ध सभी क्षेत्रों में फैल गया।

सर्व प्रथम भीष्म और अर्जुन के बीच द्वन्द्व युद्ध हुआ। दोनों ने अपने अपने साहस का अच्छा परिचय दिया। इसके साथ सात्यकी ने कृतवर्मा के साथ, अभिमन्यु ने बृहद्बल (कोसल राजा) से, भीम ने दुर्योधन के साथ, दुश्शासन ने नकुल से, दुर्मुख ने सहदेव के साथ, युधिष्ठिर ने शल्य से, धृष्टद्युम्न ने द्रोण के साथ, धृष्टकेतु ने बाह्लिक से, घटोत्कच ने अलंबुस से, शिखण्डी ने अश्वत्थामा से, विराट ने भगदत्त से तथा द्रुपद ने सैंधव के साथ द्वन्द्व युद्ध किये। पर उनमें कोई पराजित नहीं हुआ। वह युद्ध देखने लायक़ था।

इसके बाद दोनों दलों के बीच अंधाधुंध युद्ध चला। पर भीष्म ने अपने प्रताप का अच्छा परिचय दिया और सब उसकी वीरता पर चकित हुए। ठीक दुपहर के वक़्त भीष्म पांडवों की सेना में घुस पड़े। उनकी रक्षा के हेतु दुर्मुख, कृतवर्मा, कृपाचार्य, शल्य और विविंशती साथ में थे। अभिमन्यु ने देखा कि भीष्म पांडवों

५४. श्वेतु की मृत्यु

की सेना का संहार करते जा रहे हैं, इस पर रुष्ट हो वह भीष्म से जूझ पड़े। भीष्म के झण्डे को गिरा दिया और उनके साथ आये हुए वीरों के छक्के छुड़ाये। उस युद्ध को देख लोगों ने सोचा कि अभिमन्यु अर्जुन की युद्ध कला को भी मात कर रहा है। शीघ्र ही अभिमन्यु की मदद के लिए भीम, विराट और उसके पुत्र, सात्यकी, धृष्टद्युम्न वगैरह दस योद्धा आ पहुँचे।

उत्तर एक हाथी पर सवार हो शल्य से लड़ने आया, पर उस युद्ध में चोट खाकर उत्तर हाथी पर से नीचे जा गिरा। इसे देख उत्तर का भाई श्वेतु ने एक साथ सात कौरव योद्धाओं का सामना किया। उस भयंकर युद्ध में शल्य मरते-मरते बाल-बाल बच गया। लेकिन भीष्म से श्वेतु की रक्षा करने के हेतु पांडवों को भयंकर युद्ध करना पड़ा। इसके परिणाम स्वरूप दोनों पक्षों के बीच भारी युद्ध हुआ। श्वेतु ने बाक़ी सभी कौरव योद्धाओं को भगाया और भीष्म के साथ विकट युद्ध किया। उस वक़्त श्वेतु ने भीष्म का सामना न किया होता तो भीष्म ने पांडव सेना की अधिकांश सैनिकों का संहार किया होता। श्वेतु ने अपने पराक्रम का अद्‌भुत परिचय देकर आख़िर भीष्म को भी पीछे हटने के लिए बाध्य किया, इस पर पांडवों ने हर्षनाद किये।

भीष्म के पीछे हटते ही श्वेतु धृतराष्ट्र के पुत्रों के पास पहुँचा। कौरव सेना का नाश होते देख भीष्म ने फिर श्वेतु का सामना किया। भीष्म की सहायता के लिए आठ कौरव योद्धा आये और सब ने श्वेतु पर बाणों की वर्षा की। फिर भी श्वेतु ने सब का एक साथ सामना किया और भीष्म को अनेक प्रकार से तंग किया। देखनेवालों को लगा कि भीष्म श्वेतु के हाथों में पराजित हो जायेंगे। उस युद्ध में श्वेतु का रथ टूट गया। भीष्म का वध करने के लिए श्वेतु गदा लेकर भीष्म के

रथ पर आया। उसके गदे के प्रहार से भीष्म का रथ टूट गया। भीष्म पहले ही जानता था कि उसका रथ टूट जाएगा, इसलिए वह अपने रथ से उतरकर दूसरे रथ पर चढ़ गया और श्वेतु पर टूट पड़ा।

श्वेतु अपना रथ खोकर पृथ्वी पर खड़ा था, इसे देख सात्यकी, भीम, अभिमन्यु वगैरह उसकी मदद के लिए आ पहुँचे। लेकिन भीष्म ने उन सब को दूर पर ही रोक दिया। इसके बाद भीष्म ने एक बाण का प्रयोग करके श्वेतु के प्राण ले लिए। श्वेतु महारथी ही न था, अपितु पांडव सेनापतियों में से एक था, अतः उसकी मृत्यु से पांडवों को अपार दुख हुआ और कौरवों को अमित आनंद हुआ। दुर्योधन वाद्यों के नाद के साथ नाच भी उठा।

श्वेतु की मृत्यु हो जाने पर उसका भाई शंखु क्रुद्ध हो उठा और कृतवर्मा के साथ रहनेवाले शल्य के साथ युद्ध करने को आया। तब सात कौरव योद्धा शल्य की मदद के लिए आये। भीष्म भी मृत्यु-देवता की भांति आकर शंखु पर टूट पड़ा। इस पर अर्जुन शंखु की मदद के लिए आ पहुँचा। शल्य ने शंखु का रथ तोड़ दिया, तब शंखु अर्जुन के रथ पर जा बैठा।

भीष्म अर्जुन को छोड़ द्रुपद पर टूट पड़ा और अपने बाणों से दावानल की भांति द्रुपद की सेना का नाश करने लगा।

उस वक़्त भीष्म के अपूर्व युद्ध को देख पांडव योद्धा कांप उठे। उनका सामना करना पांडवों के लिए संभव प्रतीत न हुआ।

इतने में सूर्यास्त हो गया। दोनों पक्षों के लोग युद्ध रोककर अपने अपने शिविरों में चले गये। भीष्म ने जो भयंकर युद्ध किया था, उस पर दुर्योधन अत्यंत प्रसन्न हुआ। मगर प्रथम दिन अपनी सेना की अपार क्षति पाकर युधिष्ठिर दुखी हुआ और कृष्ण के पास जाकर बोला—"कृष्ण, आज भीष्म ने कैसा दारुण युद्ध किया है? हमारी सेना को दावानल की भांति जला दिया है। भीष्म को कौन पराजित कर सकता है? उनका सामना करके मैंने मूर्खता की बात की। हे कृष्ण, हम लोग जंगलों में जाकर आराम से जीयेंगे। इससे इन सब राजाओं के मरने से बचा सकता हूँ। राज्य की आकांक्षा ने मुझे इस हालत में पहुँचा दिया है। मेरे सभी छोटे भाई घायल हो गये हैं। हम ज़िंदगी भर तपस्या करेंगे। मुझे बताइये कि अब मेरा कर्तव्य क्या है? युद्ध में अर्जुन तटस्त रह रहा है। अकेला भीम पूरे मनोयोग के साथ युद्ध कर रहा है। लगता है कि आज भीष्म के हाथों में हमारी मृत्यु लिखी हुई है।"

कृष्ण ने युधिष्ठिर को सांत्वना देते हुए कहा—"तुम्हारा इस तरह व्याकुल होना ठीक नहीं है। तुम्हारे भाई तीनों लोकों को हराने की शक्ति रखते हैं। सात्यकी, विराट, द्रुपद, धृष्टद्युम्न जैसे महारथी अनेक लोग तुम्हारे पक्ष में हैं। इसलिए तुम्हें चिंता करने की क्या ज़रूरत है? शिखण्डी भीष्म को मारने के लिए ही तो पैदा हुआ है!"

इस पर युधिष्ठिर ने धृष्टद्युम्न से कहा—"कृष्ण ने हमें आदेश दिया है कि तुमको सेनापति बनावे। इसलिए तुमको कौरव सेनाओं का संहार करना चाहिए। हम सब तुम्हारे पीछे रहेंगे ही।"
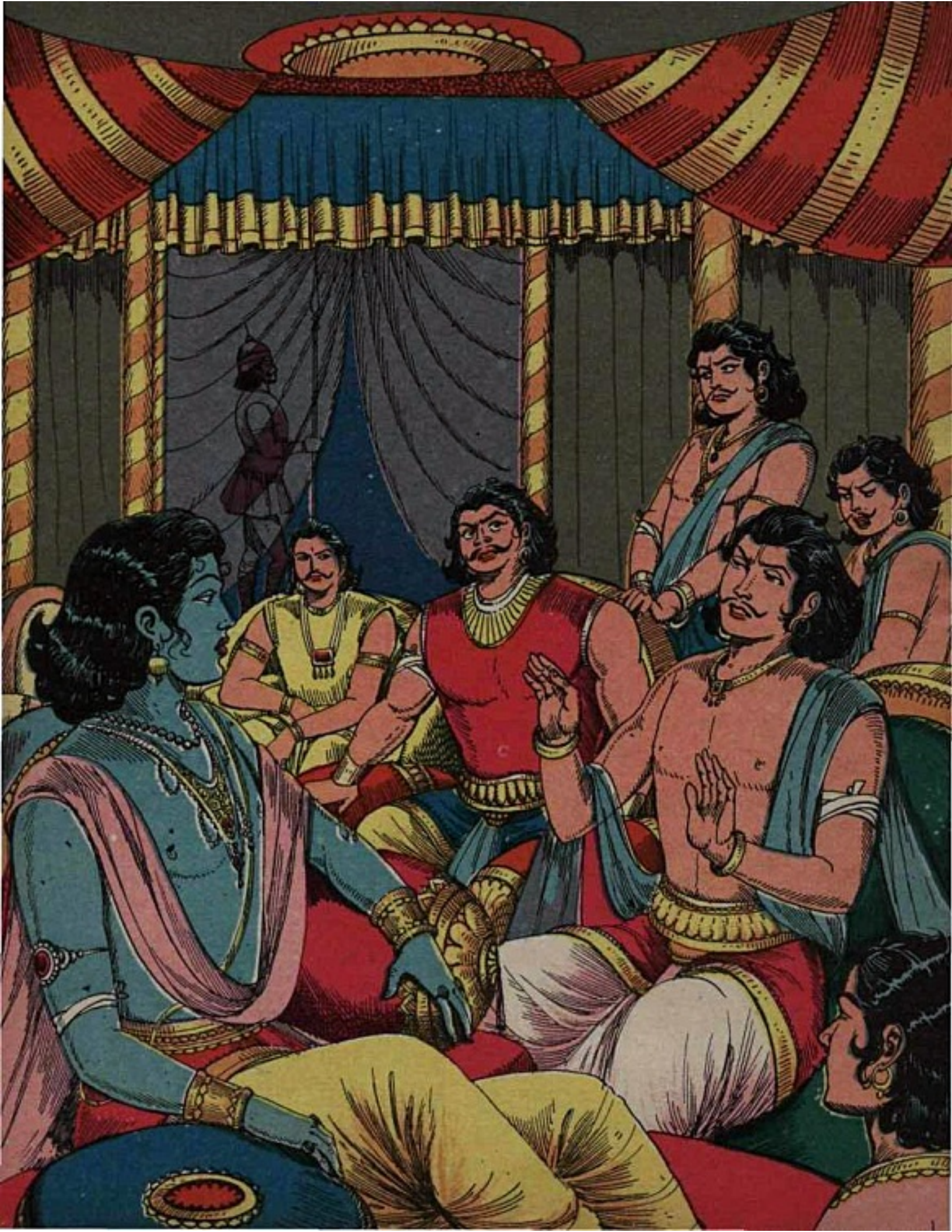
आगे आज अर्जुन खड़ा था। व्यूह के शिरोभाग के पास द्रुपद अपनी सेना के साथ खड़ा हो गया। युधिष्ठिर पूंछ के स्थान पर, भीम और धृष्टद्युम्न पंखों के स्थान पर खड़े हो गये। सूर्योदय के पूर्व ही व्यूह-रचना निर्मित हो युद्ध के लिए तैयार हो गयी।

पांडवों की सेना को क्रौंच-व्यूह में देख भीष्म, द्रोण, दुर्योधन आदि ने मिलकर प्रति व्यूह की रचना की। उसमें विविध योद्धा विभिन्न स्थानों में थे। दोनों पक्षों की सेनायें अत्यंत उत्साह के साथ शंख, भेरी आदि का निनाद करके युद्ध के लिए तैयार हो गयीं।

इस पर धृष्टद्युम्न ने कहा-"राजन, मैं द्रोण का वध करने के हेतु ही पैदा हुआ हूँ। भीष्म, द्रोण, कृप, शल्य तथा अन्य सभी योद्धाओं का मैं सामना करूंगा।"

"मैंने सुना है कि क्रौंच-व्यूह शत्रु का नाश करता है। देवता और राक्षसों के युद्ध के समय इंद्र ने बृहस्पति को यह व्यूह बताया था। यह व्यूह-रचना सब कोई नहीं जानते। कल हमारी सेना को क्रौंच-व्यूह में खड़ा करो।" युधिष्ठिर ने कहा।

दूसरे दिन सबेरा होते ही पांडवों की सेना क्रौंच-व्यूह में खडी हो गयी। उसके

युद्ध के प्रारंभ होते ही भीष्म ने अभिमन्यु, भीम, अर्जुन, विराट, धृष्टद्युम्न इत्यादि पांडव दल के योद्धाओं पर बाणों की वर्षा की। इसलिए पांडवों का व्यूह टूटने लगा। अर्जुन ने क्रोध में आकर कृष्ण से कहा कि उसके रथ को भीष्म की ओर ले जाय। उसने भीष्म का वध करने का निश्चय किया। कपि ध्वजा के साथ अनेक प्रकार की पताकाओं वाले अर्जुन का रथ भीष्म की ओर बढ़ रहा था, तब मार्ग मध्य में ही अर्जुन ने अपार कौरव सेना का वध किया।

इसे देख भीष्म अर्जुन के सामने आया। उनके पीछे रक्षा के हेतु सैंधव आदि अनेक वीर आये। अर्जुन पर भीष्म के साथ द्रोण, कृप, दुर्योधन, शल्य, अश्वत्थामा, विकर्ण इत्यादि ने बाण चलाये। बाणों की चोट खाकर भी अर्जुन विचलित न हुआ, बल्कि उत्साह में आकर सबको घायल भी बनाया। तब अर्जुन की मदद के लिए सात्यकी, विराट, धृष्टद्युम्न, उप पांडव, अभिमन्यु भी युद्ध करने आये। अर्जुन को द्रोण से मुक्त करने के ख्याल से द्रुपद ने द्रोण पर हमला किया। तब अर्जुन शत्रु के प्रमुख वीरों के बीच जाकर युद्ध करने लगा।

इसी समय दुर्योधन ने भीष्म के पास जाकर कहा–"दादाजी, अर्जुन हमारी सेना का सर्वनाश कर रहा है। तुम्हारी वजह से ही कर्ण ने शपथ ली कि तुम्हारे युद्ध क्षेत्र में रहते वह अस्त्र ग्रहण न करेगा। वह भी होता तो बड़ा अच्छा होता। लेकिन इस वक़्त वह नहीं है। इसलिए अर्जुन का वध करने का उपाय तुम्हीं सोच लो।"

दुर्योधन के मुँह से ये बातें सुनकर भीष्म खीझ उठा और बोला–"छीः, यह तुम्हारा कैसा क्षत्रिय धर्म है?" इसके बाद भीष्म अर्जुन के रथ के समीप पहुँचा। तुरंत भीष्म की सहायता के लिए कौरव योद्धा तथा अर्जुन की मदद के लिए पांडव वीर जमा हुए। देखते-देखते भीष्म तथा अर्जुन के बीच युद्ध प्रारंभ हो गया। दोनों उत्साह में आकर युद्ध करने लगे। एक दूसरें के बाणों से अपनी रक्षा करते समानपूर्वक अपने साहस का परिचय देने लगे। इस युद्ध में दोनों के रथ टूट गये, दोनों के घोड़े व सारथी घायल हुए। कृष्ण को भी तीन बाण लगे और उनके शरीर से खून बहने लगा। इस पर रोष में आकर अर्जुन् ने भीष्म के सारथी पर भी तीन बाण चलाकर उसे घायल बनाया। इस युद्ध में भीष्म अर्जुन को तथा अर्जुन भीष्म को हरा नहीं पाये।

इसी वक़्त अन्य द्वन्द्व युद्ध भी शुरू हो गये। द्रोण तथा धृष्टद्युम्न के बीच घोर युद्ध हुआ। धृष्टद्युम्न का युद्ध-कौशल देख पांडव वीरों ने उत्साह में आकर सिंहनाद किये। आखिर धृष्टद्युम्न अपने बाण तथा रथ को खो बैठा। उसके कवच में छेद बन गये और द्रोण के बाणों के प्रहार से वह परेशान था, तब भीम ने आकर उसकी रक्षा की और द्रोण के साथ युद्ध प्रारंभ किया।

तब दुर्योधन ने भीम के ऊपर कालिंग तथा उसकी सेना को भेजा, इस पर द्रोण भीम को छोड़ विराट और द्रुपद के साथ युद्ध करने को गया। धृष्टद्युम्न एक दूसरे रथ में बैठ कर युधिष्ठिर के पास पहुँचा। भीम ने कालिंग की सेना के साथ युद्ध किया, कालिंग के पुत्र शुक्रदेव, भानुमंत श्रुतायुष आदि का वध किया और उसकी सेना के बीच घुसकर अंधाधुंध सबका वध करने लगा। इस दृश्य को देख धृष्टद्युम्न उत्साह में आया। सिंहनाद करके भीम की सहायता के लिए आ पहुँचा। उस वक़्त भीम मानव की तरह नहीं बल्कि काल जैसा दीख रहा था।

सेनाओं के बीच कोलाहल देख वेग के साथ भीष्म उस ओर आ पहुँचा। सात्यकी, भीम और धृष्टद्युम्न उस पर टूट पड़े। भीष्म ने तीनों के साथ तीव्र युद्ध किया। भीम के रथ के घोड़े मर गये। तब धृष्टद्युम्न भीम को अपने रथ पर चढ़ा कर दूसरी ओर ले गया। भीम को प्रसन्न करने के लिए सात्यकी ने भीष्म के सारथी को अपने बाणों का प्रयोग करके मार डाला। तब भीष्म के रथ को घोड़े किसी दिशा में खींच कर ले गये। इसके बाद सात्यकी भीम के पास आकर उसके कंधे पर थपथपाते बोला–"वाह, भीम, तुम्हारे प्रताप को क्या कहें? तुमने अकेले ही कालिंग तथा उसके पुत्रों को मार डाला है।" यों कहते उसके साथ गले लग कर भीम का उत्साह बढ़ाया।

मित्र-भेद

[२]

दमनक के द्वारा सियार की कहानी सुनकर राजा सिंह पिंगलक बोला– "हमारा सारा परिवार डरकर जंगल से भाग जाना चाहता है।"

"महाराज, यह उनकी गलती नहीं है। जैसे राजा, वैसी प्रजा। आप हिम्मत करके यहीं पर रह जायें तो मैं रंभाहट करनेवाले जानवर का समाचार ले आऊँगा। इसके बाद आप जैसा करना चाहे, वैसा कर सकते हैं।" दमनक ने समझाया।

"अच्छी बात है! लेकिन तुम्हें इतनी हिम्मत है?" पिंगलक ने पूछा।

"मालिक की आज्ञा हो तो कोई भी विश्वासपात्र सेवक संदेह कर सकता है? वह समुद्री जल और आग में कूदने को भी तैयार हो जायगा।" दमनक ने कहा।

"अच्छी बात है। तब तो चले आओ। तुम्हारा शुभ हो!" पिंगलक ने कहा।

इसके बाद दमनक सिंह को प्रणाम करके रंभाहट की दिशा में रवाना हुआ।

पिंगलक अपने मन में यों सोचने लगा– "मैंने अपना भय इसके सामने प्रकट करके भूल तो नहीं की? यह उस भयंकर जानवर को लाकर धोखे से मुझे मरवा नहीं डालेगा न? जिसे आश्रय न मिला हो, ऐसे सेवक कुछ भी करने को तैयार हो जाते हैं। इसलिए मैं और कहीं छिपकर इंतजार करूँगा।"

यह सोचकर पिंगलक आत्मरक्षा के हेतु एक अनुकूल प्रदेश में गया, फिर सोचा– "विश्वास करनेवाला बलवान कभी कभी

अंतिम पृष्ठ का चित्र

निर्बल के हाथों में भी हार जाता है। सावधान रहनेवाला निर्बल व्यक्ति बलवान के सामने भी नहीं झुकता।"

इस बीच दमनक ने जाकर रंभानेवाले संजीवक को देखा, यह जानकर वह आश्चर्य में आ गया कि संजीवक तो एक साधारण बैल है। उसने सोचा कि संजीवक को लेकर पिंगलक के मन में भय है, इसे आधार बनाकर पिंगलक को अपने अधीन में रखना आसान है। सेवक सदा यह चाहते हैं कि अपने मालिक के सामने कठिन समस्यायें पैदा हो जायें। क्योंकि उन्हें हल करने के बहाने वे लोग फ़ायदा उठा सकते हैं। जिस राजा के समक्ष कोई समस्या नहीं होती उसे सलाह देनेवालों की क्या आवश्यकता है? तंदुरुस्त व्यक्ति के लिए वैद्यों तथा औषधों की भी क्या आवश्यकता है?

इसके बाद दमनक पिंगलक के पास गया। पिंगलक ने पूछा–"क्यों बे, तुमने उस भयंकर जानवर को देखा?"

"आपकी कृपा से देख लिया है। आपके बल-पराक्रम के बारे में उसे सविस्तार बताया भी है। आपके शासन को स्वीकार करने की सलाह भी दी है। मैं उसे आपके चरणों के पास लाऊँगा और आपका सेवक बना दूंगा।" दमनक ने कहा। ये बातें सुन पिंगलक बड़ा प्रसन्न हुआ और बोला–"जल्दी जाओ, उसे मेरे पास ले आओ।"

तब दमनक संजीवक के पास आकर बोला–"अरे नटखट बैल, यहां आ जाओ! बिना शिष्टता के हमें परेशान करते रंभाते क्यों हो? हमारे राजा पिंगलक इसकी कैफ़ियत तलब करना चाहते हैं?"

"अरेरे! तुम जिस पिंगलक की बात करते हो, वह कौन है?" संजीवक ने पूछा।

"यह क्या? तुम हमारे राजा पिंगलक को नहीं जानते? उनका परिचय दूं तो तुम कांप उठोगे! वह एक बहुत बड़ा सिंह है। जंगल का राजा है। सभी जानवर उसके परिवार में हैं। वह एक विशाल बरगद के नीचे दरबार लगाये बैठा रहता है। इस जंगल में रहनेवाले समस्त प्राणियों का वह मालिक है।" दमनक ने समझाया।

ये बातें सुन संजीवक डर गया और दमनक से बोला–"अरे, तुम तो बड़े अच्छे आदमी मालूम होते हो। यदि तुम मुझे उनके पास ले जाना चाहते हो तो पहले उनसे मुझे अभय दिलाओ तो।"

"तुम्हारी इच्छा ठीक ही है। लेकिन राजाओं का चित्त बड़ा गहरा होता है, तुम यहीं रहो।" यों दमनक ने संजीवक को समझाया। पिंगलक के पास जाकर बोला–"महाराज, वह जानवर साधारण नहीं है। कहता है कि वह साक्षात् शिवजी का वाहन है। शिवजी की अनुमति से ही वह इस जंगल में चर रहा है।"
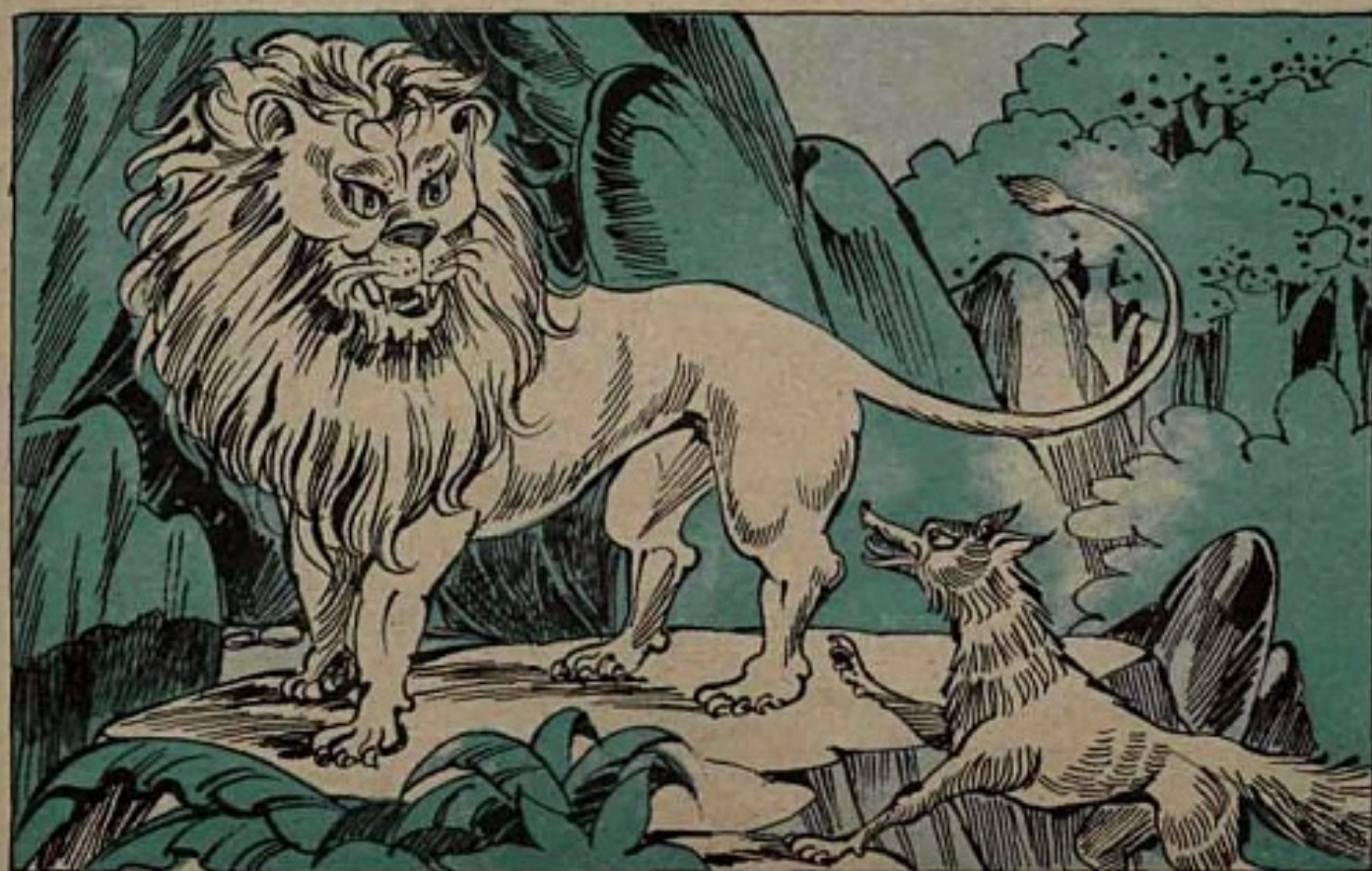
ये बातें सुन पिंगलक घबरा गया और बोला–"अरे, मैं पहले ही जानता था कि बिना ईश्वर की अनुमति के कोई भी इस जंगल में स्वेच्छापूर्वक घूमते, भयंकर रंभाहट नहीं कर सकते। हाँ, तुमने यह नहीं बताया कि तुमने उससे क्या कहा?"

मैंने उसे समझाया है–"हमारे राजा तो साक्षात् पार्वतीदेवी का वाहन हैं। पार्वतीदेवी ने ही हमारे राजा को यह जंगल दे दिया है। तुम यहाँ पर अतिथि बनकर आये हुए हो। इसलिए तुम हमारे राजा के दर्शन करके उनसे संधि कर लो, तब खूब खाओ, पिओ, घूमो, खेलो और उनकी अनुमति से अपनी ज़िंदगी बिताओ। मेरी इन बातों को उसने मान लिया है, पर वह आपसे अभय चाहता है।"

पिंगलक बहुत प्रसन्न हुआ और बोला–"वाह, तुमने अच्छा कहा। मैंने उसे अभय दे दिया है, उसे बुला लाओ।"

संजीवक को लाने जाते वक़्त दमनक का हृदय आनंद के मारे फूल उठा। वह सोचने लगा कि उस पर राजा का अनुग्रह हुआ। तब दमनक संजीवक के पास जाकर बोला–"हे मित्र, मैंने तुम्हारे लिए हमारे राजा का अनुग्रह प्राप्त कर लिया है। उन्होंने तुम्हें अभय प्रदान किया है। तुम अब बिना शंका के मेरे साथ आ सकते हो। लेकिन एक बात याद रखो। तुम्हें सदा मेरी बात माननी होगी। तुम यह सोचकर घमण्ड में न जाओ कि तुम राजा के आत्मीय हो, इसलिए सारा शासन मेरे द्वारा चलने दो, ऐसा करने से हम दोनों को सुख प्राप्त होगा। एक व्यक्ति शिकार करनेवाले जानवर को हांकता है और दूसरा उसे मारता है। तब दोनों मिलकर उसे बांट लेते हैं। यही शिकार का धर्म है। अलावा इसके यदि तुम मुझे असंतुष्ट करोगे तो तुम्हारा नाश होगा। राजा के नौकरों को प्रसन्न न करनेवाले दंतिल की भांति अपमानित होते हैं।"

"सो कैसे?" संजीवक ने पूछा। दमनक ने दंतिल की कहानी सुनाना शुरू किया।

१४१. प्राचीन चित्र

ई. पूर्व १४९५ में ईजिप्ट की रानी हाट्सेप्रसूट ने धूप के पेड़ों को दूसरे देशों से मंगवाकर अपने बगीचे में गड़वा दिया। ये पेड़ टोकरियों तथा बोरों में रखकर नौकाओं पर लाये गये थे। तिबिम के पास इस रानी के द्वारा निर्मित मंदिर में यह दृश्य ई. पू. १४८७ के क़रीब चित्रित है। याने यह चित्र ३४६० वर्ष पुराना है।

Photo by P. Jayaraj

पुरस्कृत परिचयोक्ति

'डरो मत यह नकली है'

प्रेषक : आर. एल. गुप्ता

Photo by P. Sundaram

आर. जी. एस. आफिस्
आर. के. पुरम, नई दिल्ली

'हटो परे यह तो असली है'

पुरस्कृत
परिचयोक्ति

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार २०)

★

★ परिचयोक्तियाँ अक्तूबर ५ तक प्राप्त होनी चाहिए।

★ परिचयोक्तियाँ दो-तीन शब्द की हों और परस्पर संबंधित हों, पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ दिसम्बर के अंक में प्रकाशित की जायंगी!

चन्दामामा

इस अंक की कथा-कहानियाँ-हास्य-व्यंग्य

दूसरा मुखपृष्ठ:

बौद्धालय का आराम

तीसरा मुखपृष्ठ:

आराम में बुद्ध

Printed by B. V. REDDI at The Prasad Process Private Ltd., and Published by B. VISWANATHA REDDI for Chandamama Publications, 2 & 3, Arcot Road, Madras-26. Controlling Editor: 'CHAKRAPANI'

Photo by: UMA RANI

मित्र-भेद